आर्ष-ग्रन्थावलि ।

कठ-उपनिषद्

पण्डित राजाराम प्रोफैसर

डी० ए० वी० कालेज, लाहौर प्रणीत.

भाषा भाष्य सहित ।

सँव्वत् १९७९ वि०, सन् १९२२ ई० ।

बाम्बे मैशीन प्रेस लाहौर में मैनेजर हरभगवान शर्म्मा के प्रबन्ध से छपी ।

चौथीवार २०००] [मूल्य ।≡)

कठ उपनिषद् की विषय-सूची।

❋ भूमिका ❋

अध्याय १ वल्ली १

दूसरी वल्ली।

तीसरी वल्ली ।

अध्याय २ वल्ली ४

पांचवीं वल्ली ।

छटी वल्ली ।

❋ कठके मन्त्रों की वर्णानुक्रमणिका ❋

—०—

❀ भूमिका ❀

भगवान् वेदव्यास ने यजुर्वेद की रक्षा और प्रचार का काम अपने शिष्य वैशम्पायन को सौंपा। वैशम्पायन के बहुत से शिष्यों में से एक कठऋषि हुए हैं। उनके नाम पर यजुर्वेद की एक कठ-शाखा है *। यह उपनिषद् उस शाखा की है, इसलिये इसको कठोपनिषद् कहते हैं। और कठ शाखा का आम्नाय होने से इसका नाम काठक भी है। मुक्तिकोपनिषद् में इस को कृष्ण यजुर्वेदीय उपनिषदों में पहली उपनिषद् गिना है। संस्कृत व्याख्याकारों के अनुसार भी यह यजुर्वेदीय ही है †।

इस उपनिषद् के दो अध्याय और छः वल्ली हैं। वल्ली का अक्षरार्थ बेल है। और यह शब्द तैत्तिरीय उपनिषद् में भी प्रयुक्त हुआ है। ऋषियों के अभिप्राय से वेद एक घनी छाया और अमृत फलों वाला वृक्ष है, जिसके नीचे सन्तप्त अपने सन्ताप को दूर करते हैं, और थके मान्दे विश्राम पाते हैं और दोनों ही अमृत फल खाते हैं। इसी अलङ्कार से कर्म उपासना और ज्ञान उसके काण्ड बतलाए हैं, और इसी अलङ्कार से वेद की बहुत सी शाखाएं बतलाई हैं, जिन में से एक कठशाखा है, जिस पर यह कठ उपनिषद् की छः बेलें छाई हुई हैं। वृक्ष की शोभा शाखाओं से है, और शाखाओं की शोभा बेलों से है। यह शोभा अन्तिम (आखिरी) है,इसलिये वेद के अन्तिम भाग अर्थात् ब्रह्मविद्या में आकर इसको दिखलाया है। अब वृक्ष पूर्ण शोभायमान है।

कथा की विचित्रता और सूक्ष्म विचारों को सरल रीति पर बतलाने से यह उपनिषद् बड़ी रसिक है। इस उपनिषद् में नचिकेता की कथा और उसकी वह शिक्षा है, जो उसे मृत्यु से मिली है। नचिकेता मरने के पीछे जीवात्मा के सद्भाव (हस्ती) और उसकी अवस्थाओं को जानना चाहता है। इस गूढ रहस्य का उसे बतलाने वाला यम वह है, जो इस लोक

---

* ऋषि के नाम से उसकी शिष्य परम्परा के सभी लोग अर्थात् कठशाखा वाले सभी कठ कहलाते हैं और स्त्रियें कठी।

† कोलब्रुक के अनुसार यह उपनिषद् सामवेदीय है। और प्रायः यह अथर्ववेदीय उपनिषदों में भी गिनी गई है। (मोक्षमूलर पर यह भूल है। यह कृष्ण यजुर्वेदीय ही है।

और परलोक के जीवन और इन दोनों जीवनों के अन्तराल (मध्य, दर्मियान) में जीवात्मा की अवस्थाओं को जानता है ।

यह यम कौन है ? इस बात को जाने बिना इस उपनिषद् की रचना का गौरव प्रतीत नहीं होगा । कईएक नए टीकाकारों ने यमको अपनी ही नाईं एक मानुष व्यक्ति समझकर शङ्कराचार्य्य की नाईं यमाचार्य्य नामसे पुकारा है, इन टीकाकारों की बुद्धि में यह आचार्य्य एक विलक्षण ही आचार्य्य था । क्योंकि वह नचिकेता को सारी पृथिवी के राज्य का प्रलोभन देसका है (१ । १ । २४) । इसलिये वह सार्वभौम राजा भी था । और कि उसने नचिकेता को कहा है, कि तू सौ सौ वर्ष की आयु वाले पुत्र पौत्र मांगले और आप भी जबतक चाहता है, जीता रह (१।१।२३) इसलिये वह एक महावैद्य भी था, जो ऐसे फलों वाले नुसखे बता सकता था । इस आचार्य्य का नाम मृत्यु भी था, अन्तक भी था, यम भी था । इत्यादि कल्पनाएं इन टीकाकारों ने जगह २ पर की हैं । पर हमें शोक से कहना पड़ता है, कि वे इतनी बनावट बनाकर भी सफल-मनोरथ नहीं हुए । क्योंकि मृत्यु का ऐश्वर्य केवल इतना ही नहीं, अपितु वह अजर और अमर भी है, जब कि मनुष्य जरा और मरा वाला है (१।१।२८) । अब चाहे वह महावैद्य और सार्वभौम राजा ही क्यों न हो, पर मनुष्य अजर अमर नहीं हो सकता, किञ्च यह यम मरने के पीछे मनुष्य पर शासन करने वाला है, (१।२।६) । यह सामर्थ्य किसी महाराज वा महावैद्य के हिस्से में नहीं आया । अतएव ऐसी कल्पना मन भाती भी क्यों न हो, पर वह उपनिषद् का अर्थ नहीं बनसकती । यह टीकाकार इस बात की भी परवाह नहीं करते, कि जब पिता ने क्रोध के वश होकर पुत्र को कहा कि "मैं तुझे मृत्यु को दूंगा" (१।१।४), तो उसे ऐसा मृत्यु अभिप्रेत नहीं, जो महाराज भी हो और महावैद्य भी हो । और यदि नचिकेता ने पिता के अभिप्राय के विरुद्ध केवल नाम की आड़ लेकर एक मृत्यु नाम का आचार्य्य जा ढूंढा, तो वह मिथ्याचारी है, और इसीलिये ब्रह्मविद्या का अनधिकारी है ।

तब फिर यम कौन है ? स्वामी शङ्कराचार्य्य और उनके अनुयायियों के अनुसार यम एक देवता है । देवताओं के विषय में उन

का यह सिद्धान्त है, कि देवता चेतन हैं मनुष्यों से ऊपर और परमात्मा से नीचे हैं। परमात्मा की ओर से उनको भिन्न २ अधिकार मिले हुए हैं, जिनका वे पालन करते हैं। देवता अजर और अमर हैं, पर उनका अजर अमर होना मनुष्यों की अपेक्षा से है, वस्तुतः उनकी भी अपनी २ आयु नियत है। देवता देवलोक में रहते हैं और वे अपने ऐश्वर्य के प्रभाव से अनेक प्रकार के देहों को धारण कर सकते हैं। ब्रह्माण्ड की दिव्य शक्तियों में से एक २ शक्ति पर एक २ देवता को अधिकार है, और जिस शक्ति पर जिसका अधिकार है, वही उसका देह है, जो उसके वश में है। सूर्य पर जिस देवता को अधिकार है, वह सूर्य में उसी सम्बन्ध से रहता है, जैसे हमारा आत्मा इस देह में अर्थात् सूर्य उसका देह है और वह उस में जीवात्मा है। जैसे हमारे अधीन यह देह है, वैसे उसके अधीन सूर्यरूपी देह है। हम एक थोड़ी सी शक्तिवाले देह के स्वामी हैं, वह एक बड़ी शक्तिवाले देह का स्वामी है। वह अपनी रुचि के अनुसार यथारुचि नया देह बनाकर उस में भी विचर सकता है। यह देव सूर्य का अधिष्ठाता कहलाता है और सूर्य के नाम से ही बुलाया जाता है। इसी प्रकार अग्नि और वायु के अधिष्ठाता देव हैं। देवताओं की उपासना से ऐश्वर्य मिलता है, जिसके कि वे आप मालिक होते हैं, पर मुक्ति नहीं। मुक्ति केवल ब्रह्मज्ञान से प्राप्त होती है। देवता स्वयं भी ब्रह्म को साक्षात् करने से ही मुक्त होते हैं। ब्रह्म को साक्षात् करके भी वे तब तक दिव्य शरीर को धारण किये रहते हैं, जब तक उनका वह अधिकार समाप्त नहीं हो लेता, जिस अधिकार पर उनको परमेश्वर ने लगाया है। अधिकार की समाप्ति पर वे मुक्त होजाते हैं। और उनकी जगह दूसरे आ ग्रहण करते हैं, जो मनुष्यों में से ही उपासना द्वारा उस पदवी के योग्य बन गए हैं। देवताओं के ऐश्वर्य्य के दर्जे हैं और सब से ऊंचा दर्जा हिरण्यगर्भ का है।

इन्हीं देवताओं में से एक यम है। यमको यह अधिकार मिला हुआ है, कि वह उन लोगों को दण्ड दे, जिन्होंने मर्त्यलोक में अपना धर्म्म पालन नहीं किया। दण्ड देने के लिये रौरव आदि सात नरक उसके अधीन हैं। यम सूर्य का पुत्र है और उसका मन्त्री चित्रगुप्त

है । यम ब्रह्म को साक्षात् करके भी अपने अधिकार को पालन कर रहा है । उसी के पास नचिकेता गया और उपदेश ग्रहण किया । यह उपनिषद् उनके सम्वाद को प्रकट करती है ।

स्वामी शङ्कराचार्य के इस सिद्धान्त में देवता विषयक पुराने और नए विचार दोनों मिला दिये गए हैं । वेद में सूर्य्य आदि देवताओं को मनुष्यों की नाईं देहधारी नहीं माना है, किन्तु उनके देह आदि का वर्णन रूपक अलङ्कार से है । जैमिनिमुनि अपने शास्त्र में यही सिद्धान्त स्थिर करते हैं और स्वामी शङ्कराचार्य्य भी जैमिनि का सिद्धान्त यही बतलाते हैं । (देखो ब्रह्मसूत्र १।३।३२) और यह स्पष्ट है, कि जैमिनि का विचार केवल वेदविषयक है, इसलिये वह पीछे के मन्तव्यों से मिला हुआ नहीं है । सो यह सिद्धान्त भी वैदिक और पौराणिक भावों के मेल से बना है, शुद्ध वैदिक नहीं ।

यह सत्य है, कि यम वैदिक देवता है । पर देवता विषय में जो शुद्ध वैदिक भाव है, वह हमने वेदोपदेश में प्रमाणों सहित सविस्तर लिख दिया है, अतएव उसे यहां न दुहरा कर केवल यम के विषय में ही लिखते हैं—

कठ उपनिषद् के आश्रय से यम वैवस्वत अर्थात् सूर्य्य का पुत्र है । यह कौन है ? काल । सूर्य्य दिन और रात बनाता है । यही दिन रात महीने ऋतु बरस और युग बनते हैं । यही काल है । हर एक प्राणधारी का अन्त करनेवाला होने से यह अन्तक है और मारने वाला होने से मृत्यु है । काल के दो भेद हैं । खण्डकाल और अखण्ड काल । अखण्ड काल सूर्य्य का पिता है, वह सब का ही कारण है । काल की इस महिमा का वर्णन बड़े सौन्दर्य्य और विस्तार के साथ अथर्ववेद के उन्नीसवें काण्ड के ५३ और ५४ दो सूक्तों में दिया है । पर यम काल के उस व्यापक स्वरूप से अभिप्राय नहीं है, किन्तु यम से खण्ड काल का केवल वही स्वरूप अभिप्रेत है, जो मरने के पीछे हमारे यहां के कर्म्मों के फल का हेतु है । इस विशेष शक्ति का एक देवता विशेष के रूप में रूपक अलङ्कार से वर्णन किया है ।

किसी वस्तु के सामर्थ्य वा अधिकार को वर्णन करने के लिये उसे ऐसे पुरुष के रूपमें वर्णन करना, कि जिसमें वह सामर्थ्य और

अधिकार पाए जाएं, कविता का एक गुण है। इस तरह के वर्णन सभी जगह पाए जाते हैं। जैसाकि मनुस्मृति में दण्ड का वर्णन है-

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥

जहां काले रंग का लाल आंखों वाला दण्ड पाप का नाशक बन कर विचरता है, वहां प्रजाओं में बेचैनी नहीं होती, यदि दण्डका नेता न्याय दृष्टि से देखता है ॥ यहां जैसे दण्ड को अपने अधिकार के अनुरूप एक मनुष्य के रूप में वर्णन किया है, इसी प्रकार यम को अपने अधिकारानुरूप एक मनुष्य के रूप में वर्णन किया है। वेदोपदेश में हम दिखला चुके हैं, कि वेद में जो देवताओं का वर्णन है, वह केवल जड़मात्र का वर्णन नहीं, किन्तु उस के साथ उस के अधिष्ठाता चेतन परमात्मा का वर्णन है। जड़ उसका देह है और परमात्मा उसका अन्तरात्मा है। अर्थात् सर्वान्तर्यामी परमात्मा की महिमा इस प्रकार अनेक देवताओं के द्वारा प्रकट की है। यम का वर्णन भी इसी रीति पर हुआ है। वेद में यम को एक राजा वर्णन किया है, जिसका राज्य बड़ी २ दूर की भूमियों तक फैला हुआ है। मरने के पीछे लोग जिसके पास जाते हैं, और जिसने उनके कर्मों के अनुसार रस्ते निकाल दिये हैं ॥ (ऋग्वेद १० । १४) ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनु पस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥१॥
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्याः अनुस्वाः॥२॥

विवस्वान् (सूर्य्य) के पुत्र राजा यम की हवि से पूजा करो, जिसके पास सभी लोग जाते हैं, जो दूर की भूमियों में गया हुआ है, और जो बहुतों के लिए मार्ग बतलाता है ॥१॥ यम ने ही हमारे लिए पहिले पहल मार्ग ढूंढा है, अब वह मार्ग नष्ट नहीं होगा। पृथिवी पर जन्म लेने वाले सब लोग अपने २ कर्मानुसार उसी मार्ग से जाएंगे, जिससे कि हमारे पूर्व पितर गए हैं ॥ २ ॥

इस प्रकार वेद में यम को कर्मानुसार फल का देने वाला सिद्ध किया है । और यह भी कि पुण्यात्मा जन उसके पास रहते हैं । तैत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक ७ अनुवाक ५ में भी ऐसा ही वर्णन है ॥

वैवस्वते विविच्यन्ते यमे राजनि ते जनाः ।
ये चेह सत्येनेच्छन्ते य उ चानृतवादिनः ॥ १३ ॥
ते राजन्निह विविच्यन्तेऽथोयन्ति त्वामुप ।
देवाꣳश्च ये नमस्यन्ति ब्राह्मणाꣳश्चापचित्यति ॥ १४ ॥

विवस्वान् के पुत्र राजा यम के पास वह जन निखर (अलगकर) दिये जाते हैं, वह जो यहां सचाई से सारे काम चाहते हैं और वह जो झूठ बोलने वाले हैं ॥१३॥ हे राजन् वह यहां निखर दिये जाते हैं, और तेरे पास आते हैं, जो देवताओं को नमस्कार करते हैं और ब्राह्मणों को पूजते हैं ॥ १४ ॥

बृहदारण्यक उपनिषद् १.४ ११ में यम को क्षत्रिय राजाओं के मध्य में गिना है ॥

इन प्रमाणों से यमका स्वरूप और उसके वर्णन का प्रकार यह सिद्ध होता है, कि यम एक देवता है, यह देवताओं में एक राजा है । जो लोग यहां से जाते हैं, उसके पास जाते हैं । वह इनका न्याय करता है । वह अपने राज्य में इनको जगह देता है । यह जगह उनके अपने कर्मों के अनुसार होती है । यम उनको अपनी अपनी जगह का रस्ता बतला देता है । यम देवताओं में से एक राजा के रूप में वर्णन किया है, इसलिए उसके अधिकार के योग्य और भी सब कुछ उसी रीति पर वर्णन किया है, जैसा एक ऐसे अधिकारी के लिए होना चाहिये ॥

यह कठ उपनिषद् की आख्यायिका कोई ऐतिहासिक इति वृत्त नहीं, किन्तु एक कल्पित आख्यायिका है । और यहां उपनिषद् में यह इस अभिप्राय से है, कि गुरु ऐसा होना चाहिये, जिससे जो कुछ सीखते हैं, वह उसने साक्षात् किया हुआ हो । यहां नचिकेता क्या जानना चाहता है । यह कि देह में देह से अलग कोई आत्मा है, जो मरने के पीछे रहता है, वा देह के साथ ही सब कुछ नष्ट हो

जाता है ? लोगों के परस्पर विरुद्ध कथनों ने उसको सन्देह में डाल दिया है, एक कहता है "है" और दूसरा कहता है, "नहीं है"। इस संशय को मिटानेवाला कौन होना चाहिये ? यह मरने के पीछे की हस्ती में संशय है। इसका मिटानेवाला पूरा गुरु वही है, जिस के पास मरकर जाते हैं, क्योंकि उस अवस्था में जीवात्मा की हस्ती का भेद जानने वाला वही है। नचिकेता को एक ऐसा आचार्य्य देने से कवि ने उपनिषद् के सौन्दर्य को पूर्ण कर दिया है॥

पर वेद यम और मृत्यु में भेद रखता है । यम यहां से अपने पास गए हुए लोगों का न्याय करता है और उन पर ईशन (हुकूमत) करता है। और मृत्यु मारने वाला है । ऋग्वेद में से यम का वर्णन ऊपर दे आए हैं। मृत्यु का वर्णन ऋग्वेद १०।१८ में है। यम का अधिकार सब पर है "संगमनं जनानां" उसके पास सभी लोग जाते हैं (ऋग्वेद १०।१४।१) पर मृत्यु का अधिकार देवयान से अलग है "परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्" (ऋग्वेद १।१८।१) दूसरे रस्ते का पीछा करो हे मृत्यो जो तेरा अपना निज का देवयान से अलग है॥

इसी प्रकार बृहदारण्यक १।४।११ में भी यम और मृत्यु अलग अलग गिने हैं—

यहां इस कठ उपनिषद् में दोनों को एकता करदी गई है। यहां पर उसी को मृत्यु और उसी को यम बतलाया है। और वेद के अनुसार यद्यपि यम का अधिकार फैला हुआ है, उसके राज्य में स्वर्गीजन भी वास करते हैं, तथापि मृत्यु के अधिकार संकुचित हैं (देखो ऋग्वेद १०।१८।१) इस उपनिषद् में यम और मृत्यु में भेद न रहने के कारण स्वर्ग में यम का अधिकार नहीं है कठ (१।१।१२) और धर्म से विमुख लोग उसके वश में पड़ते हैं। (कठ २।६) फिर होते २ यम के वर्णन में इतना भेद होगया है, कि जहां वह वेद के अन्दर एक परोपकारी राजा वर्णन किया है जिसके पास पुण्यात्माजन मृत्यु के पीछे रहते हैं, और सुख भोगते हैं, वहां पुराणों में वह पापियों को बड़े कड़े दण्ड देने वाला वर्णन किया है, उसके अधिकार में बड़े २ भयानक नरक हैं, जिन में वह उनको घोर यातना भुगाता है। पुण्यात्माओं के साथ उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा।

यम और नचिकेता के सम्वाद की कल्पना का सब से पहला बीज ऋग्वेद मण्डल १० का १३५वां सूक्त है। सायणाचार्य्य ने जितना सादृश्य इस कथा के साथ उस सूक्त का मिलाया है, उतना नहीं है तथापि इस सूक्त पर विचार करने से यह निःसन्देह जान पड़ेगा, कि यह सूक्त कठोपनिषद् की रचना का बीज अवश्य हुआ है। इसके पीछे यह बीज तैत्तिरीय ब्राह्मण में आकर अंकुरित हुआ है। वहां यह कथा इस प्रकार है:—(तैत्तिरीय ब्रा० ३।११।८) ॥

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस। तꣳह कुमारꣳसन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश। स होवाच। तत कस्मै मां दास्यसीति। द्वितीयं तृतीयम्। तꣳह परीत उवाच। मृत्यवे त्वा ददामीति ॥

(फल) चाहते हुए वाजश्रवस ने (यज्ञ में) अपना सारा धन देदिया। उसका नचिकेता नामी एक पुत्र था। अभी वह कुमार ही था, पर जब (उसके पिता से ऋत्विजों को) गौएं दी जारही थीं, तो उसमें श्रद्धा प्रविष्ट हुई। उसने कहा प्यारे पिता! मुझे किस को दोगे? उसने दुबारा और तिबारा कहा। पिता क्रोध से भर गया और उसे कहा। "तुझे मृत्यु को दूंगा" ॥

तꣳह समुत्थितं वागभिवदति गौतमकुमारमिति। स होवाच परेहि मृत्योर्गृहान्। मृत्यवे वै त्वाऽदामिति। तं वै प्रवसन्तं गन्तासीति होवाच तस्य ह स्म तिस्रोरात्रीरनाश्वान् गृहे वसतात्। स यदि त्वा पृच्छेत्। कुमार कतिरात्रीरवात्सीरिति। तिस्र इति प्रतिब्रूतात्। किं प्रथमाꣳरात्रिमाश्ना इति प्रजां त इति किं द्वितीयामिति। पशूꣳस्त इति। किं तृतीयामिति। साधुकृत्यां त इति ॥

तब उस गौतमकुमार को वाणी ने कहा, उसने (तेरे पिता ने) कहा है, कि तुम मृत्यु के घरों को जाओ, मैंने तुझे मृत्यु को देदिया है, और कहा, कि तुम उस समय जाओ, जब मृत्यु घर से बाहर हो, और तीन रात बिना खाए उसके घर में रहो। यदि वह तुझे

पूछे । "कुमार ! तू कितनी रातें यहां रहा है, तो तुम उत्तर दो कि तीन । (फिर जब वह पूछे) तुमने पहली रात को क्या खाया है ? (तो कहो) तेरी प्रजा (सन्तान) दूसरी रात को क्या खाया है ? (कहो) तेरे पशु । तीसरी रात को क्या खाया है ? (कहो) तेरे नेक काम । (मिलाओ कठ० उप० १ । १ । ८ से) ॥

तं वै प्रवसन्तं जगाम । तस्य ह तिस्रो रात्रीरनाश्वान् गृह उवास । तमागत्य पप्रच्छ । कुमार कति रात्री रवात्सीरिति । तिस्र इति प्रत्युवाच । किं प्रथमां रात्रिमाश्ना इति । प्रजां त इति । किं द्वितीयामिति । पशूꣳस्त इति । किं तृतीयामिति । साधुकृत्यां त इति ॥

वह मृत्यु के पास गया, जब वह परदेश में था । और तीन रात उसके घर बिन खाए रहा । जब मृत्यु वापिस आया, तो उसने पूछा, कुमार तू कितनी रातें यहां रहा है ? उसने उत्तर दिया "तीन" । तूने पहली रात को क्या खाया है ? तेरी प्रजा । दूसरी को क्या ? तेरे पशु । तीसरी को क्या ? तेरे नेक काम ।

नमस्ते अस्तु भगव इति होवाच । वरं वृणीष्वेति ।

यम ने कहा "भगवन् ! तुझे नमस्कार हो" । वर चुनले ।

पितरमेव जीवन्नयानीति ।

(उसने कहा) मैं जीता हुआ पिता के पास वापिस जाऊं ।

द्वितीयं वृणीष्वेति ।

अब दूसरा (वर) चुनले ।

इष्टापूर्तयोर्मेऽक्षितिं ब्रूहीति होवाच ।

(उसने कहा) मुझे बतलाओ कि किस तरह मेरे इष्ट और पूर्त (यज्ञ और दूसरे नेक काम) नष्ट न हों ।

तस्मै हैतमग्निं नाचिकेतमुवाच । ततो वै तस्येष्टापूर्ते न क्षीयेते । नास्येष्टापूर्ते क्षीयेते, योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते, य उ चैनमेवं वेद ॥

(यमने) उसको यह नाचिकेत अग्नि (यज्ञ) बतलाया, कि इससे उसके इष्ट और पूर्त नहीं क्षीण होते हैं । (अब भी) उस यजमान के इष्ट और पूर्त नहीं क्षीण होते, जो नाचिकेत अग्नि को चिनता है और जो इस रहस्य को जानता है ॥

तृतीयं वृणीष्वेति ।

(अब) तीसरा (वर) चुनले ॥

पुनर्मृत्योर्मेऽपजितिं ब्रूहीति होवाच ।

मुझे बताओ पुनर्मृत्यु का जीतना ।

तस्मै हैतमग्निं नाचिकेतमुवाच । ततो वै सोऽपपुनर्मृत्युमजयत् । अपपुनर्मृत्युं जयति, योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते य उचैनमेवं वेद ।

उसको उसने यही नाचिकेत अग्नि बतलाया । उस से उस ने पुनर्मृत्यु को जीत लिया ।

अब भी वह पुरुष पुनर्मृत्यु को जीत लेता है, जो नाचिकेत अग्नि को चिनता है और वह जो इस (रहस्य) जो जानता है ॥

इस आश्रय को लेकर उपनिषद् की रचना की गई है । इस में जितना मेल और भेद है, वह दोनों के पढ़ने से स्पष्ट होजायगा। इसके पीछे भी इस उपनिषद् की छाया लेकर एक और कल्पना हुई है और वह नासिकेत पुराण है ॥

नचिकेता ऐतिहासिक नाम है, वह वाजश्रवस का पुत्र है, वाजश्रवस को आरुणि औद्दालकि (१ । ११) और (१ । १०) कहा है । गौतम इसका गोत्र नाम है और आरुणि अरुण का पुत्र और औद्दालकि उद्दालक का पुत्र । पर स्वामी शङ्कराचार्य ने (कठ० १ । ११ में) औद्दालकिका अर्थ उद्दालक भी सम्भव माना है (देखो बृह० उप० ३ । ६ । १) छा० ६ । १ । १ में एक बड़े योग्य शिष्य श्वेतकेतु के पिता को भी आरुणि गौतम कहा है । और श्वेतकेतु को आरुणेय कहा है । आरुणेय अर्थात् आरुणि का पुत्र, अरुण का पोता कौषीतकि १ । १ में श्वेतकेतु का पिता आरुणि (उद्दालक-व्याख्या) गौतम है ।

यह आवश्यक नहीं कि कल्पना सर्वांश में ही कल्पना हो उस में ऐतिहासिक नाम और ऐतिहासिक घटनाएं भी जगह पासकती हैं । इस रचना में नचिकेता इस ऐतिहासिक नाम ने जगह पाई है । सम्भव है कि नचिकेता ने जिस यज्ञ को विशेष प्रवृत्त किया वह उसके नाम से नाचिकेत अग्नि प्रसिद्ध हुआ, जिसके निर्वचन के लिए तैत्तिरीय की रचना और इस उपनिषद् की रचना हुई हो ।

कठ उपनिषद्—अध्याय १ वल्ली १

ओ३म् । उशन् हवै वाज श्रवसः सर्ववेदसं ददौ । तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥ तꣳह कुमारꣳसन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥ २ ॥ पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः । अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥ ३ ॥ स होवाच पितरं "तत कस्मै मां दास्यसीति" । द्वितीयं तृतीयम् । तꣳहोवाच "मृत्यवे त्वा ददामी"ति ॥ ४ ॥

(परलोक का भला) चाहते हुए वाजश्रवस ने (एक यज्ञ में अपना) सारा धन देदिया। उसका नचिकेता नाम एक पुत्र था ॥ १ ॥ जब (संकल्प की हुई) दक्षिणाएं (ऋत्विज और सदस्यों को) दी जारही थीं, तो उस (नचिकेता) में श्रद्धा प्रविष्ट हुई, यद्यपि अभी वह एक बच्चा ही था, उसने सोचा ॥ २ ॥ यह गौएं जो पानी पीचुकी हैं, (अब आगे कुछ नहीं पीना है) घास खाचुकी हैं, दूध दुहा चुकी हैं, और शक्तिहीन (बांझ) हैं। जो इनका दान करता है वह उन लोकों को प्राप्त होगा, जो आनन्द से शून्य* हैं ॥३॥ उसने (यह जानकर कि उसके पिता ने अपना सब कुछ देने का संकल्प किया है और इसलिये अपने पुत्र को भी) अपने पिता को कहा "प्यारे पिता मुझे किसको दोगे" दुबारा और तिबारा (कहा)। तब पिताने उसको (क्रुद्ध होकर) कहा, "तुझे मृत्यु को दूंगा †" ॥ ४ ॥

---

* अनन्दाः=आनन्दसे खाली। देखो बृह० उप० ४ । ४ । ११

† ददामि=देता हूं, यहां यह भविष्यत् के अभिप्राय में हैं । कई पुस्तकों में "दास्यामि" पाठ है ।

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः । किंस्विद् यमस्य कर्तव्यं यन्मयाऽद्य करिष्यति ॥ ५ ॥ अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथाऽपरे । सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥ ६ ॥

(पुत्र अपने आप में कहता है) कई लोगों में से (जिन्होंने आगे मरना है) मैं पहले (यम के पास) जाता हूं, और कई लोगों के (जो अब मर रहे हैं) मध्य में जाता हूं। यम (यहां से जाने वालों पर ईशन करने वाले) का वह क्या काम होसकता है, जिसको वह आज मेरे द्वारा करेगा ॥५॥ ध्यान दे (इस पर) जैसाकि हमारे बड़े (गये हैं) और आगे देख वैसे ही दूसरे (अब जा रहे हैं)। मर्त्य (मरनेवाला मनुष्य) अनाज की तरह पकता है (पककर गिरता है) और अनाज की तरह फिर उत्पन्न होता है (मरना मनुष्य के लिये नियत है, यह कोई अनहोनी बात नहीं, मुझे इससे कोई भय नहीं) * ॥ ६ ॥

---

* स्वामी शङ्कराचार्य्य इन दोनों श्लोकों का अर्थ इस तरह लिखते हैं। जब पिता ने क्रोधवश होकर पुत्र को ऐसा कहा, तो वह एकान्त में उदास होकर अपने जी में सोचने लगा "बहुत से मुख्य शिष्यों वा पुत्रों में से मैं मुखिया हूं और बहुत से मध्यम शिष्यों वा पुत्रों में से मैं मध्यम हूं, पर मैं अधम कभी नहीं हूं। सो यद्यपि मैं एक नेक लड़का हूं, तौ भी पिता ने मुझे कहा है, "मैं तुझे मृत्यु को दूंगा" वह यम का क्या प्रयोजन मेरे देने से सिद्ध करेगा, जो उसे आज करना है। निःसन्देह उस ने क्रोध से ही ऐसा कहा है, तौ भी पिता का वचन झूठा नहीं होना चाहिये, यह सोच कर उस ने पिता को कहा, (जो अब अपनी बात पर पछता रहा था, कि शोक, मैंने क्रोध में क्या कहा कह दिया) पिताजी अपने बड़ों की ओर ध्यान दो, और अब भी जो भले पुरुष हैं, उनकी ओर ध्यान दो, उन में झूठ का आचरण न कभी हुआ है, और न अब है। झूठा

सङ्गति—अब नचिकेता यम के घरों में प्रवेश करता है, जब कि यम घर में नहीं है। वहां वह यम के आने तक तीन दिन विना खाने के रहता है। जब यम आता है, तो उसको उसके अधीनजन यह कहते हैं—

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्। तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥७॥ आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां चेष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान्। एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे॥८॥

ब्राह्मण * अतिथि बनकर (साक्षात्) अग्नि (की नाईं) घरों में प्रवेश करता है, † (अग्नि के दाह को शान्त करने की

आचरण असत्पुरुषों का होता है। और झूठ करके भी कभी कोई अजर अमर नहीं हुआ। क्योंकि मनुष्य खेती की तरह पकता है, और खेती की तरह फिर उगता है। इस प्रकार की अनित्य दुनियां में झूठ करने से क्या फल है। अपनी सचाई का पालन करो और मुझे यम की ओर भेजो। इस अर्थ में "एमि" मैं जाता हूं, यह पद अनावश्यक सा प्रतीत होता है। और न "एमि" का अर्थ "हूं" है "हूं" "अस्मि" का अर्थ होता है "एमि" का कभी नहीं। किञ्च इस अर्थमें ५वें के उत्तरार्ध में नचिकेता अपने पिता पर दोष लगाता हुआ प्रकट किया गया है और फिर छटे में वह पिता को सचाई पर स्थिर रहने का उपदेश देता हुआ प्रकट किया है। यह बातें नचिकेता के स्वभाव के अनुकूल नहीं हैं। वह पिता का सच्चा भक्त है और विश्वास से पूर्ण है, वह मरने के लिये तय्यार है, वह जानना चाहता है कि मरने के पीछे क्या देखेगा। यम का वह क्या कर्तव्य है, जिस को वह आज मेरे द्वारा करेगा। सो हमारा अर्थ भी पद रचना के अनुसार है, और आशय भी निर्दोष है। संस्कृत टीकाकारों में से राघवेन्द्रयति ने यही आशय प्रकट किया है॥

* यहां ब्राह्मण का अर्थ ब्रह्मवेत्ता करना भूल है। ब्रह्मविद्या तो अभी उसने सीखनी है। नचिकेता ब्राह्मण था। इसलिये उसे आगे नवें श्लोक में ब्रह्मन् भी कहा है, ब्रह्मन् का अर्थ तो ब्रह्मवेत्ता करना सर्वथा मनमाना अर्थ है। † देखो वासिष्ठ धर्म्म सूत्र ११। १३॥

तरह उसकी यह शान्ति करते हैं (अर्घ्य देने से) हे वैवस्वत जल लेजा* ॥७॥ जिस मूर्ख पुरुष के घर में ब्राह्मण बिना खाने के रहता है, उसकी आशाओं और प्रतीक्षाओं, उसकी मलकीयत उसकी मीठी और सच्ची बाणी, उसके इष्ट और पूर्त † उस के सब पुत्र और पशु इन सब को नष्ट कर देता है ‡ ॥ ८ ॥

तिस्रो रात्रीयदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः । नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥९॥ शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माऽभिमृत्यो । त्वत्प्रसृष्टं माऽभिवदेत् प्रतीत एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥१०॥ यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः । सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ॥ ११ ॥

---

* जल (अर्थात् अर्घ्य) अतिथि के लिये पहली पूजा की वस्तु है ।

† आशा, उस वस्तु की होती है, जिसको हम हृदय से चाहते हैं, चाहे वह हमें मिले वा न मिले । और प्रतीक्षा (उडीक) उसकी होती है, जिसके होने का ख्याल है, चाहें हम उसको चाहें, वा न चाहें । फ़ेल होने की किसी विद्यार्थी को आशा (चाहना) नहीं होती, पर जब उसने लिखा ठीक नहीं होता, तो उसको प्रतीक्षा होती है, कि उसके लिये यही फल निकलेगा । और जब ठीक लिखकर आता है, तो आशा और प्रतीक्षा दोनों पास होने की होती हैं । यहां ऐसी ही प्रतीक्षा से अभिप्राय है, जिसका फल उत्तम हो ।

संगतं=जो कुछ अपने पास है, (सत्पुरुषों की संगति का फल शङ्कराचार्य्य) इष्ट=यज्ञ और पूर्त=लोकोपकार के दूसरे काम, जैसे बाग और कुंएं लगवाना, पाठशालाएं और अनाथालय खोलना

‡ यह सब उसके निष्फल जाते हैं ।

(यम नचिकेता के पास जाकर आदर पूर्वक कहता है) हे ब्राह्मण ! तू जो एक माननीय अतिथि होकर मेरे घर में तीन दिन बिना खाने के रहा है। उसके बदले में तीन वर चुनले, तुझे नमस्कार हो और मेरे लिये कल्याण हो ॥९॥ (नचिकेता कहता है) हे मृत्यो ! तीन वरों में से पहला मैं यह चुनता हूं, कि गौतम (मेरा पिता) मेरी ओर शान्तसङ्कल्प, प्रसन्न मन वाला और क्रोध से रहित हो * और कि वह प्रतीति वाला हो † और मुझे आदर से बोले (स्वागत करे) जब मैं तुझ से अनुज्ञा दिया हुआ जाऊं‡॥१०॥ (यम कहता है) मुझसे अनुज्ञा दिया हुआ, औद्दालकि आरुणि § (फिर वैसाही) प्रतीतिवाला होगा, जैसा पहले था, वह सुख से रातें सोएगा, और क्रोध से रहित होगा, जब उसने तुझे मृत्यु के मुख से छूटा हुआ देख लिया ॥ ११ ॥

सङ्गति—अब नचिकेता दूसरे वरसे स्वर्ग के साधन यज्ञ का ज्ञान चाहता है, और यम उसे वह ज्ञान देता है:—

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति । उभे तीर्त्वा ऽशनायापिपासे शोका-

---

* अर्थात् मुझे मृत्यु को देकर मेरे पिता को जो मेरे अनिष्ट का भय है, वह उसका दूर हो। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी पहला वर यही चुना है "मैं जीता हुआ जाऊं"।

† कि मैं उसके आदेश को पालन करके आता हूं; पहिचानले (शङ्कराचार्य्य)।

‡ इस से जीतेजी जाना मांग लिया है।

§ औद्दालकि=उद्दालक का पुत्र और आरुणि अरुण का पुत्र पर वह दोनों का पुत्र कैसे होसक्ता है, इस पर स्वामी शङ्कराचार्य्य लिखते हैं, कि औद्दालकि का अर्थ उद्दालक का पुत्र नहीं, किन्तु उद्दालक ही है (यहां स्वार्थ में तद्धित है और ऐसा मानने में बृहदा० उ० ३।७ भी सहारा देता है) अथवा एक का जन्म दिया हुआ पुत्र और दूसरे का बनाया हुआ। राघवेन्द्रयतिने जो अरुण को उस की

तिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १२ ॥ स त्वमग्निꣳस्वर्ग्य-मध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि तꣳश्रद्दधानाय मह्यम् । स्वर्ग लोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ॥ १३ ॥ प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् । अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥ १४ ॥ लोका-दिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा । सचापि तत् प्रत्यवदत् यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥ १५ ॥

(नचिकेता) कहता है, स्वर्गलोक में कोई भय नहीं है, न वहां तू है (हे मृत्यो) और न कोई बुढ़ापे से डरता है । भूख और प्यास दोनों से पार होकर और शोक की पहुंच से परे हुआ, स्वर्ग लोक में प्रसन्न रहता है ॥ १२ ॥ सो आप हे मृत्यो ! उस अग्नि (यज्ञ) को जानते हैं, जो ऐसे स्वर्ग का साधन है । वह मुझे बतलाएं क्योंकि मैं श्रद्धावान् हूं । वे जो स्वर्गलोक में रहते हैं अमृत को सेवन करते हैं । यह मैं दूसरे वर से मांगता हूं ॥ १३ ॥ (यम कहता है) स्वर्ग के साधन अग्नि (यज्ञ) को पूरी तरह जानता हुआ मैं तुझे बतलाता हूं, उसे मुझ से समझ । वह अग्नि जो

माता का नाम मानकर निर्वाह किया है; यह केवल उसी के लिये रुचिकर होसक्ता है । राघवेन्द्रयति ने पूर्वार्ध "को मुझ से भेजा हुआ नचिकेता पहिले की न्याईं पहचाना जाएगा" इस प्रकार नचिकेता के विषय में लगाया है, इसका मूल "त्वत्प्रसृष्टः" इस नचिकेता के वचन को "मत्सृष्टः" के साथ एक करने का है । और उत्तरार्ध को वाजश्रवस के विषय में ही लगाया है ॥

गुफा में रक्खी हुई है * अनन्तलोक की प्राप्ति का साधन, और उसकी प्रतिष्ठा † (बुनियाद) है ॥१४॥ तब यम ने उसे वह अग्नि (यज्ञ) बतलाया, जो लोकों का आदि है ‡ और जो ईंटें (चयन के लिये आवश्यक हैं) और जितनी (आवश्यक हैं) और वे जिस प्रकार (रखी जानी चाहियें, यह सब उसे बतलाया) और नचिकता ने उसे दुहरा दिया, जैसा यह उसे बतलाया गया था। तब मृत्यु उस पर प्रसन्न होकर फिर बोला ॥ १५ ॥

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः । तवैव नाम्ना भविता ऽयमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥ १६ ॥ त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्म्मकृत् तरति जन्ममृत्यू । ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥ १७ ॥ त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद् विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् । स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१८॥

---

* जो श्रद्धावान् अधिकारी को ही बतलाई जाती है । दूसरों के लिये अन्धेरी कन्दरा में छिपी हुई है; विद्वानों की बुद्धि में स्थित है (शङ्कराचार्य) ॥

† अग्निचयन करना मानो स्वर्ग की बुनियाद रखना है; यह अग्नि विराट् रूप से जगत् की प्रतिष्ठा (आश्रय) है (शङ्कराचार्य्य) ॥

‡ मरने के पीछे यजमान जिन लोकों में सुख, मोद और प्रमोद को अनुभव करता है, यह अग्नियज्ञ उन लोकों का आरम्भ है; "(विराट् में) पहला शरीर धारी होने से अग्नि लोकों का आदि है" (शङ्कराचार्य्य) ॥

*महात्मा (यम) प्रसन्न होकर बोला—"मैं तुझे अब एक और

---

* श्लोक १६-१८ पीछे बढ़ाये गए हैं। इन में कोई विशेष बात नहीं कही गई, सिवाय इसके कि नचिकेता को एक चौथा वर और दिया, कि यह अग्नि तेरे नाम पर होगा और तू यह एक सृङ्का भी ले पीछे बढ़ानेका हेतु यह प्रतीत होताहै कि आगे २।३ में "सृङ्कां वित्तमयी" (जिसका अर्थ "धन वाले मार्ग" हैं) पाठ आया है । सृङ्का के अर्थ प्रायः हार के हैं और मार्ग के भी हैं। वहां जैसा कहा गया है कि हे नचिकेतः तूने सृङ्का को नहीं लिया है, इस से यह ख्याल किया गया, कि नचिकेता को मृत्यु की ओर से एक सृङ्का भी अर्पण की गई होनी चाहिये। पर नचिकेता को तीन ही वर दिये गए थे, अधिक नहीं। इस लिये यह एक चौथा वर उसकी प्रसन्नता का समझा गया, कि यह अग्नि तेरे नाम पर होगा और कि तू यह एक सृङ्का भी ले। और इसके लिये १६-१८ श्लोकों को डाला गया। पर यह अगले पिछले पाठ में समा नहीं सके, क्योंकि जब श्लोक १५ को "पुनरेवाह तुष्टः" से समाप्त किया है, तो १६ का आरम्भ "तमब्रवीत् प्रीयमाणः" से नहीं होना चाहिये ॥ किञ्च इन में कोई नई बात भी नहीं है । अग्नि का नचिकेता के नाम पर होना श्लोक १९ से प्रतीत हो जाता है । जिसको यहां "तवैव नाम्ना भविता ऽयमग्निः" यह अग्नि आगे को तेरे ही नाम से बोला जायगा इस वचन से दुहराया है । इन श्लोकों में प्रक्षेप्ता इस बात के जितलाने में इतना उत्सुक प्रतीत होता है, कि श्लोक १६ में छन्द से विरुद्ध भी "तवैव" इस पाठ को बढ़ा दिया । नचिकेता जैसे विद्यार्थी को रत्नमाला का देना कोई गौरव की बात न जानकर स्वामि शङ्कराचार्य्य ने दूसरे अर्थ में सृङ्का का "गति" अर्थ लेकर वह अभिप्राय दिखाया है कि और भी अनेक प्रकार के कर्म्म और विज्ञान को स्वीकार कर ॥

माला से ब्रह्मविद्या की प्रतिपादक शब्दरूप माला अर्थ लेना भी बहुत बड़ी भूल है, क्योंकि ब्रह्मविद्या यदि अपने आप ही उसे देनी यम स्वीकार कर लेता, तो फिर नचिकेता को ब्रह्म विद्या की बातें पूछने पर उनसे हटाने का प्रयत्न क्यों करता ॥

वर देता हूं, कि यह अग्नि तेरे ही नाम से होगा, और यह अनेक रङ्गों वाली माला भी ग्रहण कर ॥ १६ ॥ जिसने तीन वार नचिकेता अग्नि (यज्ञ) पूरा किया है और तीन (माता, पिता, आचार्य्य) के साथ मेल किया है*, और तीन कर्तव्य (पढ़ना यज्ञ करना और दान देना) पूरे किये हैं, वह जन्म और मृत्यु को तर जाता है। और जब उस अग्नि को जानता और अनुभव करता है, जो ब्रह्म से उत्पन्न हुई सब वस्तुओं को जानने वाला पूजनीयदेव † है, तब वह अत्यन्त शान्ति को प्राप्त होता है॥१७॥ तीन नाचिकेत (यज्ञों) वाला इन तीनों ‡ को जानकर जो नाचिकेत अग्नि को चिनता है, वह मृत्यु के फांसों को परे फैंककर शोक की पहुंच से परे हुआ स्वर्गलोक में प्रसन्न रहता है॥१८॥

एष ते ऽग्नि र्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण । एतमग्निं § प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥ १९ ॥

यह तेरा अग्नि है हे नचिकेतः ! जो स्वर्ग का साधन है, और जिसको तूने दूसरे वर से वरा है । लोग इस अग्निका प्रवचन (प्रचार) करेंगे । हे नचिकेतः ! अब तीसरा वर चुन ॥१९॥

---

* तीन से अभिप्राय माता पिता और आचार्य्य है, अर्थात् इन तीनों से जिसने शिक्षा पाई है । यद्वा वेद, स्मृति और शिष्ट है या प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम है क्योंकि इनसे धर्म्म की शुद्धि होती है (शङ्कराचार्य्य); तीन से अभिप्राय तीनों वेद हैं, तीनों वेदों के साथ जिसने मेल किया है अर्थात् जिसका आचरण वेद से विरुद्ध नहीं है (राघवेन्द्रयति) ॥

† अग्नि का अधिष्ठाता जो चेतन अग्नि है, अर्थात् इस अग्नि के अन्दर जब उस अग्नि के अग्नि को देखता है, जिसके भय से यह अग्नि जल रही है, तब अत्यन्त शान्ति पाता है ।

‡ जैसी जितनी और जिस प्रकारसे ईंटें चिननी चाहियें,इन तीनों को

§ वहां "तवैव" पाठ बढ़ाया गया है, देखो टिप्पणी पृष्ठ १८

सङ्गति—लोक में पिता की प्रसन्नता और परलोक के लिये यज्ञ का ज्ञान यह दो उत्तम फल दो वरों से वर कर अब तीसरे वर से नचिकेता आत्मा की पहचान करता है :—

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये ऽस्तीत्येके नाय-मस्तीति चैके । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वया ऽहं वराणा-मेष वरस्तृतीयः । २० ॥

मरे मनुष्य के विषय में जो यह संशय है कि कई कहते हैं, 'है' दूसरे कहते हैं 'नहीं है'* यह मैं आपसे शिक्षा दिया हुआ जान जाउं, यह वरों में मेरा तीसरा वर है ॥ २० ॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा नहि सुविज्ञेय-मणुरेष धर्मः । अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मामो-परोत्सीरति मा सृजैनम् ॥ २१ ॥

† (यम कहता है) देवताओं ने भी पहले इसमें सन्देह किया है, इसका जानना आसान नहीं, यह सूक्ष्म विषय है। कोई और वर हे नचिकेतः ! चुनले । मुझे उपरोध (मजबूर) न कर, यह (वर) मुझे छोड़ दे ॥ २१ ॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्न सुज्ञेयमात्थ । वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥ २२ ॥

---

* अर्थात् कई लोग ऐसा कहते हैं कि, इस देह का अधिष्ठाता आत्मा इस देह से अलग है। मृत्यु इस देह के लिये है, उसके लिये नहीं। और दूसरे यह कहते हैं कि यह देह ही देह है, इससे अलग कोई आत्मा नहीं, जो मरने के पीछे रहे। राघवेन्द्रयति ने यह संशय परमात्मा के विषय में बतलाया है ॥

† यम अधिकारी की परीक्षा लेने के लिये पहले इसकी कठिनता दिखलाकर इस वर से हटाना चाहता है ॥

(नचिकेता कहता है) हे मृत्यो ! देवताओं ने भी यदि इस विषय में सन्देह किया है, और आप कहते हैं, कि इसका जानना आसान नहीं, तब सचमुच इस जैसा कोई वर नहीं, और आप जैसा कोई दूसरा उपदेष्टा (ढूंढे भी) नहीं मिलेगा ॥ २ ॥

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान् । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ २३ ॥ एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च । महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥२४॥ ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामाँश्छन्दतः प्रार्थयस्व । इमा रामाः सरथाः सतूर्या नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः । आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥ २५ ॥

(यम अब उसको और प्रलोभनों में ललचाकर इस वर से हटाना चाहता हुआ कहता है) 'सौ सौ बरस की आयु वाले पुत्र और पोते, बहुत से पशु, हाथी, सोना और घोड़े वर ले, भूमिका विस्तृत भाग वरले और आप उतने बरस जी जितने तू चाहता है ॥२३॥ 'यदि तू इसके बराबर कोई और वर ख्याल करता है, तो वरले, धन और दीर्घ जीवन मांग ले। विस्तीर्ण भूमि पर *, हे नचिकेतः! तू (राजा) हो। मैं तुझे तेरी सारी कामनाओं का भोगने

---

* महाभूमौ, विस्तीर्ण भूमि पर। इस की व्याख्या—महा भूमौ, पृथिवी पर बड़ा हो, इस प्रकार भी कीगई है। पर यह सन्दिग्ध है कि उपनिषदों में महा महान् के लिये प्रयुक्त हुआ है । इस अर्थ के लिये "महान् भूमौ" पढ़ना अधिक आसान है और राघवेन्द्रयति ने यह पाठान्तर दिया है ॥

वाला बनाता हूं ॥२४॥ 'जो २ कामनाएं मर्त्यलोक में दुर्लभ हैं, उन सब कामनाओं को अपनी इच्छानुसार मांगले; ये जो सुन्दर स्त्रियें रथों समेत और बाजों समेत हैं, ऐसी (स्त्रियों) को मनुष्य नहीं पा सकते हैं,यह मैं तुझे देता हूं; इनसे अपनी सेवा करा, पर हे नचिकेतः! मरना (मरने के विषय में) मत पूछ ॥ २५ ॥

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः । अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ २६ ॥ न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत् त्वा । जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२७॥ अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् । अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥ यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो ! यत्सांपराये महति ब्रूहि नस्तत् । योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥२९॥

(नचिकेता उत्तर देता है) ये वस्तुएं, जो कल तक स्थिर रहने वाली हैं* हे मृत्यो ! ये धीरे २ सारे इन्द्रियों के तेज को जीर्ण कर देती हैं । किञ्च जीवन भी सारा थोड़ा ही है । सो आप अपने घोड़े और अपना नाचना गाना अपने पास ही † रक्खें ॥२६॥ मनुष्य धनसे तृप्त हो नहीं सकता । और क्या हम धन लाभ करेंगे, यदि तुझे देख लिया है ? और क्या हम जियेंगे, जब तक तू ईशन करेगा‡ ?

---

* अक्षरार्थ, कलकी वस्तुएं ।

† अक्षरार्थ, तेरे ही घोड़े हों, तेरा ही नाचना गाना हो ।

‡ अभिप्राय यह है कि मृत्युको देखते हुए धन किसको सूझता है और जब तक मृत्यु की हकूमत है कौन जीता रहसका है, "हम

वर तो वही एक (जिसको मैंने चुन लिया है) मुझ से वरा जायगा ॥२७॥ (द्यौलोक में) रहने वाले अजर अमर (देवताओं) के पास पहुँचकर नीचे पृथिवी लोक में रहने वाला* बूढ़ा होने वाला और मरने वाला कौन समझदार ऐसा होसकता है, जो बहुत लम्बे जीवन पर प्रसन्न होजाए, जब कि वह सौन्दर्य और विषयभोग के प्रमोदों (के तत्व) पर ध्यान डाल सकता है (कि यह अस्थिर हैं और परिणाम में दुःखदायी हैं) ॥२८॥ हे मृत्यो ! वह वस्तु जिसके विषयमें यह संशय करते हैं, और जो लंबे परलोक में है, वह हमें बतलाओ । यह वर जो ढके हुए स्थान में प्रविष्ट है † इससे अतिरिक्त नचिकेता कुछ नहीं मांगता है ॥२९॥

दूसरी वल्ली ।

संगति—अब परीक्षा में उत्तीर्ण हुए अधिकारी नचिकेता की प्रशंसा करके यम उसे आत्मविद्या का उपदेश देते हैं:—

अन्यच्छ्रेयो ऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषꣳ सिनीतः । तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयते ऽर्थाद् य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥ श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः । श्रेयो हि धीरो ऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥२॥ स त्वं प्रियान् प्रियरूपाꣳश्च कामानभिध्याय-न्नचिकेतो ऽत्यस्राक्षीः । नैताꣳसृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥ ३ ॥

धन को पायेंगे, जब तुझे देख लिया है और हम जियेंगे जब तक तू प्रभु रहेगा, तेरे पास आकर मनुष्य किस तरह थोड़े धन और थोड़ी आयु वाला होसकता है" । (शङ्कराचार्य्य) ।

* क्वतदास्थः, इस पाठान्तर का अर्थ यह है, कहां उन (कामनाओं) में आदर वाला हो, जब उससे ऊंचा पुरुषार्थ दीखता हो (शङ्कराचार्य्य) ॥ † यह वर जो अंधेरे में है, बड़ा गहन है, जिसकी विवेचना करना आसान नहीं है ॥

एक वस्तु श्रेय है और दूसरी प्रेय है *, वे दोनों, अलग २ उद्देश्य रखती हुई, पुरुष को बांधती हैं। उन दोनों में से जो श्रेय को ग्रहण करता है, उसका भला होता है, पर वह (अपने असली) उद्देश्य से गिर जाता है, जो प्रेय को चुनलेता है ॥ १ ॥ श्रेय और प्रेय मनुष्य को प्राप्त होते हैं, अब धीर पुरुष उनके गिर्द घूमकर पहले उन में भेद करता है (निखेड़ता है) फिर धीर पुरुष श्रेय को प्रेय से बढ़कर पसन्द करता है (तरजीह देता है) पर मूर्ख योगक्षेम † के हेतु प्रेय को वरता है ॥ २ ॥ तूने हे नचिकेतः! प्यारी और प्यारे रूपों वाली (धन दीर्घ जीवन दिव्य स्त्रियों आदि की) कामनाओं को ठीक देख भाल करके इन सब को छोड़ दिया है, तू उस सड़क पर नहीं पड़ा जो धनमयी (खाली धन की ओर जाती) है ‡ जिसमें बहुत मनुष्य डूबते हैं ॥ ३ ॥

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता। विद्याऽभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥ ४ ॥ अविद्यायामन्तरेवर्तमानाःस्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः। दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥५॥ न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्। अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ ६ ॥

---

* श्रेय जो मनुष्य का असली कल्याण करने वाली है और प्रेय जो प्यारी लगती है। इन्द्रियों के विषय प्यारे तो हैं, पर असली कल्याण इनके त्याग में है ॥

† योग=किसी वस्तु का पाना और क्षेम=उसकी रक्षा करना।

‡ अथवा धन की जञ्जीर में नहीं फंसा है (मिलाओ) १।१।६ ॥

यह दोनों एक दूसरे से बड़ी उलटी भिन्न २ तर्फ को ले जानेवाली हैं, जो अविद्या और विद्या नाम से प्रसिद्ध हैं। मैं तुझे हे नचिकेता विद्या का अभिलाषी मानता हूं, क्योंकि तुझे बहुत कामनाएं भी नहीं ललचासकीं * ॥४॥ † अविद्या के अन्दर रहते हुए स्वयं धीर बने हुए अपने आपको पण्डित मानते हुए मूढ़जन अन्धे से लेजाए हुए अन्धों की तरह ठोकरें खाते हुए चक्र लगाते हैं ‡ ॥५॥ जो धन के मोह से मोहित होकर प्रमत्त होरहा है। उस मूर्ख को परलोक नहीं भासता। "यह लोक है, कोई दूसरा नहीं है" ऐसा मानने वाला (मूर्ख) फिर २ मेरे वश पड़ता है ॥ ६ ॥

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः। आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥७॥ न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः। अनन्यप्रोक्तेगतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्॥८॥ नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ। यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥

वह (आत्मा) जिसका सुनना भी बहुतों को प्राप्त नहीं होता सुनते हुए भी जिसे बहुत से नहीं जानते। इसका बतलाने वाला कहीं कोई आश्चर्यरूप है और इसका पाने वाला कहीं कोई बड़ा कुशल पुरुष है; इसका जानने वाला कहीं कोई विरला ही

* लोलुपन्ति, पाठ भी है। † देखो मुण्डक उप० २। ८॥

‡ जगत् में ऐसे मूढ़जनों का घाटा नहीं, जो तत्त्व को जाने बिना ही तत्त्वज्ञानी बने बैठे हैं, वे इस झूठे अभिमान से मुक्ति नहीं पासकते, आवागमन के ही चक्र में पड़े ठोकरें खाते हैं॥

निकलता है, जब वह एक बड़े निपुण (आचार्य) से शिक्षा दिया गया हो ॥७॥ यह (आत्मा) जब किसी छोटे (–आत्मा को न पहुँचे हुए) पुरुष से बतलाया गया है, तो इसका जानना आसान नहीं होता, चाहे उस पर कितना ही (बहुत भी) विचार किया गया हो, जब तक यह अनन्य (अनुपम, असदृश, असाधारण) पुरुष से नहीं बतलाया गया है, तब तक इसमें कोई गति (रास्ता) नहीं है, क्योंकि यह जो कुछ सूक्ष्म परिमाण वाला है उस से अतर्क्य सूक्ष्म है (इतना सूक्ष्म है जो तर्क में नहीं आसकता) * ॥ ८ ॥ यह ज्ञान तर्क से नहीं मिलता, यह किसी दूसरे से (पहुंचे हुए से, नकि तार्किकसे) बतलाया हुआ ही जानने के लिए आसान होता है, जिसको तूने पाया है †, सचमुच तू सच्चे धैर्यवाला है । हे नचिकेतः ! तेरे जैसा हमें पूछने वाला हो ‡॥९॥

* जब यह उस पुरुष से बतलाया गया है, जो आत्मा के साथ अनन्य (एक) हो रहा है, तब इस में गति (=है वा नहीं है इत्यादि चिन्ता) नहीं है (अर्थात् तब कोई संदेह नहीं रहता है) अथवा अपने से अभिन्न अपना स्वरूप जो आत्मा है, वह जब बतलाया गया, तो फिर कुछ जानने योग्य नहीं रहता है । अथवा जब आत्मा के साथ एक हुए आचार्य्य से बतलाया गया है, तो फिर इसमें अगति (अज्ञान) नहीं है, अर्थात् सुनने वाले को उसका ज्ञान निःसंदेह होता है, जैसा आचार्य्य को है (शङ्कराचार्य्य); मैं ब्रह्म से भिन्न (अन्य) नहीं हूं, ऐसा जानने वाला अर्थात् स्वात्मा में और ब्रह्म में अभेद जानने वाला, एकता का जानने वाला पुरुष, अनन्य कहलाता है, जब ऐसे पुरुष से बतलाया गया है, तो इस में गति (ज्ञान) नहीं होता है अर्थात् अद्वैत वादी के बतलाने से तो भगवान् का ज्ञान ही नहीं होता (राघवेन्द्रयति)

† क्योंकि तूने दृढ़ता रक्खी है, कि मैं तुझे अवश्य सिखाऊं ।

‡ यम यह पहले नहीं सिखाना चाहता था इस ख्याल से 'नो' यहां निषेधार्थक है ऐसा नहीं समझना चाहिये, जैसा राघवेन्द्रयति ने लिखा है । पहले उस को बार२ हटाने में अधिकारी होने की परीक्षा करना था, और अब उसकी दृढ़ता देख कर उस की प्रशंसा की जा रही है ।

जानाम्यहꣳ शेवधिरित्यनित्यं नह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्। ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥१०॥

(नचिकेता कहता है) मैं यह जानता हूं, कि जो नाम निधि (धन) है, सब अनित्य है और कि जो ध्रुव (अटल, नित्य) है, वह अध्रुव (साधनों) से नहीं मिलता है। इसलिये मैंने (पहले) नाचिकेत अग्नि (यज्ञ) को चिना (किया), तब, (यज्ञ की) अनित्य वस्तुओं के द्वारा उसको पाया है जो नित्य है (=यम का अनुशासन) * ॥ १०॥

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतो रनन्त्य मभयस्य पारम्। स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥११॥ तं दुर्दर्श गूढ मनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्। अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ १२ ॥ एतच्छ्रुत्वा सं परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यं मणुमेतमाप्य। स मोदते मोदनीयꣳहि लब्ध्वा विवृतꣳसद्म नाचिकेतसं मन्ये ॥ १३ ॥

(यम कहता है) हे नचिकेतः। तूने सारी कामनाओं की पूर्ति

---

* स्वामि शङ्कराचार्य्य इसे प्रसन्न हुए यम का वचन मानकर यह अर्थ करते हैं—मैं जानता हूं, कि कर्मोंका फलरूपी निधि अनित्य है, जिस लिये अनित्य वस्तुओं से वह नित्य परमात्मा रूपी निधि नहीं पाया जाता है, इसलिये मैंने जानते हुए भी नाचिकेत अग्नि को चिना उससे अधिकार लाभ करके नित्य जो याम्यस्थान स्वर्ग गामी है उसको प्राप्त हुआ हूं।

जगत् की प्रतिष्ठा का अनन्त फल, निर्भयता का परला किनारा जो स्तोमों (बड़े २ स्तोत्रों) से महत् (महिमा वाला) * है, ऐसा विस्तीर्ण स्थान, और प्रतिष्ठा † को (अपने सामने) देखा है, तथापि धीर बनकर धैर्य के साथ छोड़ दिया है ॥११॥ वह देव (आत्मा) जिसका देखना कठिन है, जो अन्धेरे में प्रविष्ट है, गुफा में छिपा हुआ है‡, और गह्वर (दुर्गस्थान) में स्थित है। जब कोई धीर पुरुष उस सनातन को अध्यात्मयोग की प्राप्ति (विषयों से चित्त को हटाकर आत्मा में ठहराने) से जान लेता है, तो वह हर्ष और शोक से ऊपर होजाता है ॥१२॥ वह मर्त्य जिसने इसे सुन करके धारण किया है और धर्मोंवाले (जीवात्मा) को अलग करके, इस सूक्ष्म को पालिया है, वह आनन्द के केन्द्र (परमात्मा) को पाकर आनन्द भोगता है, नाचिकेता को (इस विद्या के प्रवेश के लिए) खुला घर समझता हूं ॥ १३ ॥

सङ्गति—धर्मों वाला कहने से धर्म से परे भी किसी सत्ता का बोधन होता है, और वह यम ने आनन्द का केन्द्र कहने से स्पष्ट कहा भी है; इस प्रसङ्ग से नचिकेता उसको भी पूछता है :—

अन्यत्र धर्म्मादन्यत्राधर्म्मादन्यत्रास्मात् कृताकृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥

वह (सत्ता) जिसको तू धर्म्म से भिन्न अधर्म्म से भिन्न, इस कार्य्य और कारण से भिन्न, भूत और भविष्यत् से भिन्न देखता है वह मुझे बतला § ॥ १४ ॥

---

* स्तुति के योग्य और बड़ा (शङ्कराचार्य्य) ।

† यह इशारे पिछले प्रलोभनों और पहले बतलाए हुए स्वर्ग फल की ओर हैं।

‡ गुफा अर्थात् बुद्धि में स्थिर है, क्योंकि वहां ही उस का साक्षात् होता है (शङ्कराचार्य्य) ।

§ धर्म्म, अधर्म्म, कार्य्य, कारण और भूत भविष्यत् से परली सत्ता परमात्मा का शुद्ध स्वरूप है ।

सं०--धर्मवाली सत्ता जीवात्मा और इससे परली सत्ता आनन्द-मय परमात्मा इन दोनों का स्वरूप बतलाने से पूर्व यम नचिकेता को इन के साक्षात् दर्शन के साधन (ओम्) का उपदेश करते हैं क्योंकि साधना वाले को ही उपदेश फलता है :-

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वानि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥१५॥ एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६॥ एतदालम्बनꣳश्रेष्ठ मे-तदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥

(यम कहता है) सारे वेद जिस पद का अभ्यास करते हैं * सारे तप जिसको बतलाते हैं जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्य्य का अनुष्ठान करते हैं†, वह पद मैं तुझे संक्षेप से बतलाता हूं, ओम् यह है ॥१५॥ यह अक्षर (अपर) ब्रह्म है, यह अक्षर पर‡ (ब्रह्म) है, इस अक्षर को जान करके जो पुरुष जो कुछ चाहता है, वह उसका है (अर्थात् उसे पाता है) ॥१६॥ यह सब से उत्तम आलम्बन (सहारा) है, यह सब से ऊंचा आलम्बन है, जो इस आलम्बन को जानता है, वह ब्रह्मलोक में महिमा वाला होता है§ ॥ १७ ॥

---

* समस्त वेद का परम तात्पर्य्य ब्रह्मप्राप्ति है और उन में उसी के स्वरूप का वर्णन है, कहीं शुद्ध का और कहीं शबल का, यह विषय वेदोपदेश में वैदिक प्रमाणों के साथ विस्तार से लिख चुके हैं।

† उसी के लिये तपस्वियों का तप और ब्रह्मचर्य्य होता है।

‡ अर्थात् अपर ब्रह्म और परब्रह्म की प्राप्ति का दृढ़ साधन है। अपर=शबल और पर=शुद्ध (मिलाओ प्रश्न उप० ५।२।

§ देखो प्रश्न० उप० ५ । २-५ ॥

संगति–साधन बतला कर अब अध्यात्म-विद्या का आरम्भ करते हुए पहले जीव का स्वरूप बतलाते हैं :-

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१८॥ हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

(चेतन जीवात्मा) न जन्मता है, न मरता है, न यह किसी से हुआ है, न इससे कोई हुआ है। यह पुरातन है अजन्मा है, नित्य है सदा रहने वाला है, शरीर के मरने पर यह नहीं मरता ॥ १८ ॥ यदि चोट देने वाला समझता है, कि मैं उसको मारता हूं । और चोट दिया जाने वाला समझता है कि मैं मरा, तो वे दोनों नहीं समझते हैं, क्योंकि न यह मारता है और न मरता है * ॥ १९ ॥

संगति–अब जीवात्मा का जहां निवास है, वहीं पर परमात्मा की स्थिति और परमात्मा के ज्ञान का फल बतलाते हैं—

अणोरणीयान् महतो महीयानात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥२०॥ आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः । कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ।२१। अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् । महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥२२॥

---

* मरना मारना सब शरीर में है, आत्मा न कभी मरता है, न कोई इस को मार सकता है। १८, १९ मन्त्रों के विषय में देखो गीता २ । १९, २० ॥

इस जीव की गुफा (=हृदय) में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और महान् से महत्तर आत्मा छिपा हुआ है। उस आत्मा की बड़ाई को वह देखता है, जो कामनाओं से रहित* है, शोक से परे है, जिस पर उस धाता (रचने हार) का अनुग्रह † है, ॥ २० ॥ बैठा हुआ ही, वह (आत्मा) दूर पहुंचता है, लेटा हुआ ही वह हर एक जगह जाता है, कौन उस देव को जो, मस्त‡ है, और मद से रहित है, मेरे सिवाय § जानने के योग्य है ॥२१॥ वह शरीरों में शरीर रहित है, अस्थिरों (बदलनेवाली वस्तुओं) में स्थित (एकरस) है ¶ उस महान् विभु आत्मा को जान कर धीर पुरुष शोक से परे हो जाता है--

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूंस्वाम् ॥२३॥ नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तोना-समाहितः । नाशान्तमानसोवापिप्रज्ञानेनैनमाप्नु-यात् ॥२४॥ यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः । मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥२५॥

---

* देखो श्वेता० उप० ३।२०; तैत्ति० आर० १०।१२।१।

† धातु प्रसादात्, इन्द्रियों की निर्मलता (सफाई) से (शङ्कराचार्य्य), धाता, पैदा करनेवाले के अर्थ में है, इस के लिये देखो ऋग्वेद १०।८२।२;१०।१८४।१ और मैत्रा० उप० ६।८ यह जन्तु (पैदा होने वाला) के मुकाबिले में धातृ शब्द का प्रयोग उचित जान पड़ता है।

‡ मस्त है, क्योंकि उसे किसी की परवाह नहीं।

§ मैं (आत्मा) जो है, उस से भिन्न (इति कश्चित्)

¶ पृथिवी सूर्य ग्रह नक्षत्र चन्द्र तारे सभी उस के शरीर हैं, वह इन में शरीर रहित होकर सारे परिपूर्ण है। इन में सदा परिणाम होता रहता है, वह इन से परे कूटस्थनित्य हो कर एक रस स्थित रहता है।

* यह आत्मा न वेद से पाया जा सकता है, न मेधा (दानाई) से, न बहुत सुनने से (सीखने से), हां जिसको यह स्वयं स्वीकार कर लेता है, वही उसे पासक्ता है। उस के शरीर को यह आत्मा अपनालेता है † ॥ २३ ॥ पर वह पुरुष जो अपने दुराचारों से

* देखो मुण्ड० उप० ३ । २ । ३

† अथवा उस के लिए यह आत्मा अपना स्वरूप खोलता है, प्रश्न-यहां दो शङ्काएं उत्पन्न होती हैं, एक तो यह कि, जब वेद, मेधा और शास्त्र का सुनना उसकी प्राप्ति के साधन हैं, तो इन को असाधन क्यों कहा ? दूसरी यह, कि यदि वह आप जिस पर कृपा करे वही उस को उपलब्ध करता है, तो फिर साधनों की क्या आवश्यकता है। और यह गडबडवाली बात भी है, क्या जाने वह किस पर दया करेगा ? और परस्पर विरोध भी है, जब कि वेदादि को अन्यत्र तो साधन बतलाया है पर यहां उन की साधनता का खण्डन किया है । (उत्तर)-यह दोनों बातें ठीक हैं, कोई परस्पर का विरोधादि नहीं। शब्दों पर न जाओ, अभिप्राय को समझो। अभिप्राय यह है । कि वेदादि साधन हैं सही, पर यह हमारे हृदय को परमात्मा की ओर झुका देने के ही साधन हैं, परमात्मा के साथ मिला देने के साधन नहीं । कहां यह छोटे से साधन, और कहां उस ब्रह्माण्डपति सच्चिदानन्द भगवान् के दर्शन । हां जब इन साधनों के अनुष्ठान से हमारा हृदय भगवान् की ओर झुक गया, तो भगवान् स्वयं हम को अपने निकट खींच लेते हैं । सूई जब तक चुम्बक से दूर पड़ी है, चुम्बक उस को नहीं खींचता । सूई को उस के निकट कर दो, फिर चुम्बक उसे खींच कर अपने साथ मिलालेगा। इसी तरह जब तक भगवान् से विमुख हो, तब तक भगवान् तुमको नहीं खींचेंगे, क्योंकि तुम उन से दूर पड़े हो । जब तुम ने अपना मुख भगवान् की ओर फेर लिया, तो वह स्वयं खींच कर तुम्हें अपने साथ मिलालेंगे । वह भगवान् के निकट आगया है, उन के आकर्षण की सीमा में आपहुंचा हैं, जिस ने मुख भगवान् की ओर फेर लिया है। भगवान् की ओर मुख फिरने का यह चिह्न है, कि दुश्चरितों से हट कर पुरुष केवल सच्चरित में प्रवृत्त हुआ है । इस

नहीं हटा, जो शान्त नहीं (अपने ऊपर वश नहीं रखता), जिस का चित्त एकाग्र नहीं, जिस का मन शान्त नहीं, वह इस को (खाली) प्रज्ञा (पुस्तकों के ज्ञान) से नहीं पासकता ॥२४॥ (हां उस की प्राप्ति के लिये बड़ा सावधान होने की आवश्यकता है, क्योंकि) ब्रह्म और क्षत्र जिस का भात (अन्न) है, और मृत्यु जिस का उपसेचन* है † कौन साक्षात् उसे जानता है, जहां वह है ॥२५॥

---

* तीसरी वल्ली *

संगति–तीसरी वल्ली में जीव और परमात्मा का भिन्न२ स्वरूप दिखलाकर जीवात्मा के लिये परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग बतलाते हैं–

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे। छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥१॥ यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्मयत्परम्। अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतꣳशकेमहि॥२॥

‡ दोनों, अपने कर्म्मों के लोक में § ऋत को पीते हुए,

तरह पर यह साधन हैं, क्योंकि इन साधनों की कृपा से ही हम पर भगवान् की कृपा होती है, तथापि भगवान् से मेल उन के अपने आकर्षण से ही होता है, इनसे नहीं। इसलिए भगवद्भक्ति से शून्य पुरुष के लिये वेद, शास्त्र और दानाई किसी काम की नहीं।

* उपसेचन, साथ खाने की वस्तु। घी, दही, मसाला आदि।

† सब कुछ जिस में लीन होता है और मृत्यु भी जिस से निगला जाता है। देखो ब्रह्मसूत्र १।२।६, १०।

‡ आत्मा इस जगत् की सैर करता हुआ अपनी यात्रा को जहां पहुंच कर समाप्त करता है, वह परब्रह्म की प्राप्ति है, इस वल्ली में इस विषय को वर्णन करने के लिये आत्मा और परमात्मा दोनों के वर्णन से आरम्भ किया है। दोनों से अभिप्राय आत्मा और परमात्मा है। आत्मा छाया है और परमात्मा प्रकाश है। सुकृत यहां

(हृदय की) गुफा में प्रविष्ट हुए, सब से ऊंची चोटी (हृदयाकाश) में रहते हैं। उन को छाया और धूप (की नाईं) कहते हैं। वे लोग, जिन्होंने ब्रह्म को जान लिया है, और वे गृहस्थ* जिन्होंने तीनवार नाचिकेत (यज्ञ) पूरा किया है ॥ १ ॥ हम उस नाचिकेत अग्नि के (जानने और चिनने में) समर्थ हों, जो यज्ञ करने वालों के लिए (पार उतरने) का सेतु (पुल) है, और उस अविनाशी परब्रह्म के (जानने में) समर्थ हों, जो (संसार को) तैरना चाहते हुओं के लिये निर्भय किनारा है † ॥ २ ॥

संगति–जीवात्मा की संसारयात्रा और उस का परमपद (आखरी मनज़िल) ब्रह्म की प्राप्ति बतलाते हैं।

आत्मानꣳरथिनं विद्धि शरीरꣳरथमेवतु । बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेवच ॥ ३ ॥ इन्द्रियाणि

स्वकृत के अर्थ में लिखा गया है, ऋत का अर्थ कर्म फल। पर कठिनाई यह है, कि दोनों को ऋत पीते हुए कैसे कहा है, जब कि परमात्मा कर्म और उनके फलों से ऊपर है। स्वामी शङ्कराचार्य्य इसका उत्तर यह देते हैं, कि जिस तरह एक सड़क पर कुछ लोग जारहे हों और उन में से एक ने छाता लगाया हुआ हो, तो यह कहा जाता है कि वे छाते वाले जारहे हैं। जैसे छाता एक के ऊपर ही है, तो भी सब साथी छाते वाले कहे जाते हैं। इसी प्रकार यहां भी फल भोगने वाला एक ही है, पर उनको एक साथ कहने में दोनों को फल भोगने वाला कह दिया है। देखो मुण्ड० उप० ३।१।१ ॥ और ब्रह्मसूत्र १।२।११,१२ में इस विषय पर विचार किया गया है ॥

§ लोक, अवस्था, हमारे आस पास की अवस्था जिस को हमने अपने पूर्व कर्मों के अनुसार अपने लिये बनाया है। 'लोक (शरीर) में अपने कर्मों के फल को पीते हुए (शङ्कराचार्य्य)

* अक्षरार्थ पांच अग्नियों वाले, अर्थात् गृहस्थ। पांच अग्निये गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य, आवसथ्य ॥

† यहां कर्म और ज्ञान दोनों की प्रशंसा की है, क्योंकि दोनों मिले हुए संसार से पार उतारते हैं। देखो ईश० ९–११ ॥

हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान् । आत्मेन्द्रियमनो
युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

आत्मा को रथ का मालिक (रथ पर सवार) जान, और शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि जान और मन को लगाम ॥३॥ इन्द्रियों को वे घोड़े कहते हैं, और विषय उन में सड़कें हैं, (आत्मा) जब शरीर, इन्द्रिय और मन के साथ युक्त है, तब विद्वान् उसे भोक्ता कहते हैं * ॥४॥

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥५॥
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्याणि सदश्वा इव सारथेः ॥ ६ ॥

पर जो विज्ञानवान् नहीं होता, और जिसका मन (लगाम) कभी भी जुड़ा हुआ (दृढ़ पकड़ा हुआ) नहीं होता, उसके इन्द्रिय (घोड़े) वश में नहीं होते हैं, जैसे दुष्ट घोड़े सारथि के (वश में नहीं होते हैं) ॥५॥ हां जो विज्ञान वाला है और जिसका मन सदा जुड़ा हुआ (दृढ़ पकड़ा हुआ) होता है, उसके इन्द्रिय वश में होते हैं, जैसे अच्छे (सिधाए हुए) घोड़े सारथि के (वश में होते है) ॥६॥

यस्त्व विज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न सतत्पदमाप्नोति सꣳसारं चाधिगच्छति ॥७॥

---

* शरीर रथ है, जिस में बैठ कर आत्मा इस दुनिया की सैर करता है, बुद्धि सारथि है, जो इस रथ को चलाती है । बुद्धि के हाथ में मन की लगाम है, जिस से वह इन्द्रियों को वश में रखती है । इन्द्रिय घोड़े हैं, जो इस रथ को खींचते हैं, जगत् के सारे दृश्य सड़कें हैं । और आत्मा जब इस चलते हुए रथ में बैठा है, तो वह इन सारे दृश्यों को देखता है अर्थात् भोगता है ।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदाशुचिः ।
सतुतत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥८॥
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९॥

जो विज्ञानवान् नहीं और मनवाला नहीं (मन की लगाम जिसके हाथ में नहीं) और सदा अपवित्र है, वह उस पद (उस जगह जहां पहुंचना है, विष्णु का परमपद) को नहीं पहुंचता है, वरंच संसार (जन्म मरण के चक्र) को प्राप्त होता है ॥७॥ पर वह जो विज्ञानवान् है, मनवाला है और सदा पवित्र है, वह निःसन्देह उस पद को प्राप्त होता है, जिससे फिर नहीं जन्मता है॥८॥ विज्ञान (बुद्धि) जिसका सारथि है, और मन की रास जिसके हाथ में है, वह अपने मार्ग के पार (अन्त पर) पहुंच जाता है, और वह विष्णु का परमपद (सब से ऊंचा स्थान) है ॥९॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः । मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥ १० ॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥ एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्वग्रयया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥

इन्द्रियों से परे * अर्थ हैं, अर्थों से परे मन है, मन से परे

* यहां परे से अभिप्राय सूक्ष्म है अर्थ से अभिप्राय सूक्ष्मतन्मात्र हैं, जो इन्द्रियों का कारण हैं । यहां का क्रम सांख्यशास्त्र के साथ स्पष्ट मेल रखता है, और आगे भी ६ । ७,८ में ऐसा ही वर्णन है । पर स्वामि शङ्कराचार्य्य अपने अर्थ में इस का साँख्य से मेल नहीं सहारते हैं ॥

बुद्धि है, बुद्धि से परे महान् आत्मा (महत्तत्त्व) है ॥१०॥ महत् से परे अव्यक्त (प्रकृति) है, अव्यक्त से परे पुरुष है। पुरुष से परे कुछ नहीं है, वह काष्ठा (हद) है, वह सब से परे की (ऊंची) गति है ॥ ११ ॥ यह आत्मा सब भूतों (प्राणियों) में छिपा हुआ है, बाहर नहीं प्रकाशता है, किन्तु तीक्ष्ण और सूक्ष्म बुद्धि से उन लोगों को दीखता है जो सूक्ष्मदर्शी है ॥ १२ ॥

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि । ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि१३ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथस्तत् कवयो वदन्ति॥१४॥अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययंतथाऽरसंनित्यमगन्धवच्चयत्।अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।

(उसकी प्राप्ति का उपाय बतलाते हैं) बुद्धिमान् को चाहिये कि वाणी और मन को रोके* और उनको ज्ञान आत्मा (बुद्धि) में रोके; ज्ञान को महान् आत्मा (महत्तत्त्व) में रोके, और उस (महान्) को शान्त आत्मा (परमात्मा) में रोके ॥ १३ ॥ उठो जागो! चुने हुए आचार्यों के पास जाओ, और समझो! छुरे की तेज धारा (के ऊपर से) जैसे लांघना कठिन है; इस प्रकार बुद्धिमान् उस मार्ग को दुर्गम बतलाते हैं (जो आत्मा की ओर जाता है) ॥१४॥ जो बिन शब्द, बिन स्पर्श, बिन रूप, बिन व्यय (बिन खर्च होने के है, अनखुट्ट है) बिन रस और बिन गन्ध के है, नित्य है अनादि है, अनन्त है महत् (महत्तत्त्व) से

---

* 'वाणी को मन में रोके'। यहां बाणी उपलक्षण है इन्द्रियों का अर्थात् सारे इन्द्रियों को (शङ्कराचार्य्य) ।

परे है और अटल (एक रस) है, उसको जानकर पुरुष मृत्यु के मुख से छूट जाता है ॥ १५ ॥

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् । उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते॥१६॥ य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि । प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते, तदानन्त्याय कल्पत इति ॥१७॥

मृत्यु से बतलाई हुई नाचिकेता की इस सनातन कथा को जो बुद्धिमान् कहता है और सुनता है, वह ब्रह्मलोक में महिमा वाला होता है ॥ १६ ॥ और जो इस परम गुह्य (बड़े रहस्य) को ब्राह्मणों की सभा में सुनाए, वा पवित्र हो कर श्राद्धकाल में सुनाए, वह (सुनना) अनन्त फल के लिए समर्थ होता है * ॥१७॥

अध्याय दूसरा, वल्ली ४ ।

सं०-स्वभावतःसभी बहिर्मुख होते हैं,अन्तर्मुख कोई विरला ही होताहै-

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥१॥ पराचःकामाननुयन्ति बालास्तेमृत्योर्यान्ति विततस्य पाशम् । अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥

(यम कहता है) स्वयम्भू (परमात्मा) ने (इन्द्रियों के) छेदों को आगे (बाहर) को छेदा है, इसलिए मनुष्य आगे को देखता है, पीछे

---

*"तदानन्त्याय कल्पते" यह दो वार अध्याय की समाप्ति के लिए कहा है। पर पूरे वाक्य के दुहराने से यह सम्भाविन है, कि पहले यह उपनिषद् यहीं तक बनी हो । इन अन्तिम दो श्लोकों में इस उपनिषद् का माहात्म्य कहने से भी यही सम्भावना दृढ़ होती है ।

को अपने अन्दर नहीं । कोई ही धीर पुरुष अमृत को चाहता हुआ अपनी आंखों को बन्द करके उस आत्मा को देखता है जो पीछे है ॥१॥ बाल (मूर्ख) बाहर के विषयों की ओर दौड़ते हैं वे उस मृत्यु की फांसों में पड़ते हैं, जो कि सारे फैला हुआ है। हां धीर पुरुष अमृतत्व को जानकर यहां की अस्थिर वस्तुओं में उस स्थिर वस्तु को नहीं ढूंढते हैं * ॥२॥

संगति-अन्तर्मुख के लिए आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं:-

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान्। एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते। एतद्वैतत् ॥३ स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ ४ ॥ य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्। ईशानं भूत-भव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत् ॥५॥

जिस से मनुष्य रूप, रस, गन्ध, शब्द और दूसरे के साथ मिलने के स्पर्शों को जानता है, इसीसे यह भी जानता है कि क्या यहां पीछे रहता है † । यह है वह (जिस की बाबत तूने पूछा है) ॥३॥ स्वप्न स्थान (स्वप्न के विषय) और जाग्रत स्थान इन दोनों को जिस से

---

* वे देखते हैं कि ये सब वस्तुएं अस्थिर ही हैं, इन में कोई स्थिर नहीं, सो वह स्थिर को इन से परे ढूंढते हैं।

† जिस से रूप रस आदि को जानते हैं, वह इस देह में जानने वाला है, वह आत्मा है । उस आत्मा से ही यह भी जान सकते हैं, कि मरने के पीछे क्या रहता है। मरने के पीछे भी आत्मा ही रहता है, और जानने वाला भी आत्मा ही है। अभिप्राय यह है, कि आत्मा से ही आत्मा का साक्षात् करो, जब तुम ने आत्मा से आत्मा को साक्षात् कर लिया, तो उस को साक्षात् कर लिया, जो मरने के पीछे रहता है।

देखता है, उस उदार मालिक अपने आत्मा को जान कर धीर पुरुष शोक से परे हो जाता है ॥ ४ ॥ जो मधु के खाने वाले (रूपादि विषयों के अनुभव करने वाले) जीते आत्मा को (जीवात्मा को) जान लेता है, जो सदा समीप है, भूत और भविष्यत् का मालिक है, तब वह उससे मुख नहीं फेरता है यह है वह ॥५॥

संगति-परमात्मा का वर्णन करते हैं :—

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत । गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत । एतद्वैतत् ॥६॥ या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी । गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत । एतद्वैतत् ॥७॥

जो (हिरण्यगर्भ) आदि में तप से प्रकट हुआ, जो आदि में जलों से प्रकट हुआ, जो गुफा (हृदय) में प्रवेश करके महा भूतों के द्वारा देख रहा है यह है वह ॥६॥ जो देवतामयी अदिति (प्राण अथवा हिरण्यगर्भ) से उत्पन्न हुई है, जो गुफा में प्रवेश करके स्थित हुई, महाभूतों के द्वारा अनेक रूप से प्रकट हुई है। यह है वह* ॥७॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः । दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वैतत् ॥८॥ यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति । तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन । एतद्वैतत् ॥९

---

* यह परमात्मा के दो विशिष्टरूपों का वर्णन है हिरण्यगर्भ और अदिति का । हिरण्यगर्भ सृष्टि में सब से पहला प्रादुर्भाव है, जो महाभूतों के प्रादुर्भाव से पहले हुआ । और अदिति का प्रादुर्भाव महाभूतों से पीछे का है (देखो ऋग्वेद १०।१२१ सूक्त और वेदोपदेश हिरण्यगर्भ सूक्त) ६ ७ मन्त्रों का अन्वयक्लिष्ट है, सम्भव है इन में कुछ न्यूनाधिक हुआ हो ।

अग्नि जो दो अरणियों (आग की लकड़ियों) में छिपा हुआ है, सब का जानने वाला है, ऐसी अच्छी तरह सुरक्षित है जैसे गर्भवती स्त्रियों से गर्भ, और दिन प्रतिदिन उन मनुष्यों से पूजनीय है, जो जागते हैं और हवि वाले हैं। यह है वह* ॥८॥ जिससे सूर्य उदय होता है और जिस में अस्त होता है, सारे देवता उस में प्रोए हुए हैं, उसको कोई नहीं उलांघता है। यह है वह† ॥ ९ ॥

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥ मनसैवेद माप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किञ्चन । मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ ११ ॥

‡ जो यहां है, वही वहां है, और जो वहां है, वही फिर यहां है। जो इस में भेद की तरह देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त

---

* यहां व्यष्टि शबलरूप में परमात्मा का वर्णन है अर्थात् वह जो अग्निहोत्र की अग्नि में चमकता है। स्वामी शंकराचार्य ने यहां दो अर्थ लिए हैं, अधियज्ञ में तो यज्ञ का अग्नि जो कर्मी लोगों से स्तुति किया जाता है, और अध्यात्म अर्थ में आत्मा जो योगियों से हृदय में धारण किया जाता है। इस अर्थ में जागते हैं, अर्थात् प्रमाद रहित हैं, और हवि वाले हैं, अर्थात् ध्यान भावना वाले हैं। और राघवेन्द्रयति ने अग्नि से परमात्मा, दोनों अरणियों से गुरु शिष्य, और जागते हैं से ज्ञानियों से अभिप्राय लिया है ॥

† पहले तीन में शबल का और इस में शुद्ध का वर्णन किया है ॥

‡ यहां विशिष्ट और शुद्ध में अभेद दिखलाया है, जो यहां हिरण्यगर्भ अदिति और अग्नि विशिष्ट देवतारूपों में हैं, वही वहां अपने स्वस्वरूप में हैं। जब तक मनुष्य इस अभेद को नहीं पहचानता, तब तक मृत्यु से पार उतर कर अमृत नहीं भोगता। जो शुद्ध और विशिष्ट को एक साथ जानता है, वह विशिष्ट के द्वारा मृत्यु से पार हो कर शुद्ध के द्वारा अमृत को भोगता है। (ईश० १४)

होता है ॥१०॥ मन से ही इस (ब्रह्म) को पाना चाहिए, और तब इस में कोई भेद नहीं है। वह मृत्यु से मृत्यु को जाता है, जो इस में तनिक भी भेद देखता है ॥११॥

संगति-शुद्ध का साक्षात् कहाँ और कैसा होता है :—

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत् ॥ १२॥ अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः। ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः। एतद्वैतत्॥१३॥

अंगूठामात्र पुरुष* जो शरीर के मध्य में स्थित भूत भविष्यत् का मालिक है, (उसको जानकर) तब उस से मुख नहीं फेरता है। यह है वह ॥१२॥ अंगूठामात्र पुरुष धूम से शून्य ज्योति की नाईं है, भूत भविष्यत् का मालिक है, वही आज है वही कल है (सदा एकरस है) यह है वह ॥१३॥

सं०-जगत् और परमात्मा के देखने वालों में भेद बतलाते हैं।

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति। एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानु विधावति ॥ १४ ॥ यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति। एवं मुने विजानत आत्मा भवति गौतम ॥१५॥

जैसे चोटी पर बरसा हुआ पानी पर्वतों में सब ओर दौड़ता है। इस प्रकार धर्मों (विविध प्रकाशों) को अलग देखता हुआ उन्हीं के पीछे सब ओर दौड़ता है ॥१४॥ जैसे शुद्ध पानी शुद्ध

---

* देखो श्वेता० उप० ३।१३; हृदय का परिमाण अंगूठा मात्र है, और हृदय परमात्मा की उपलब्धि का स्थान है, इसलिए परमात्मा को यहां अंगूठामात्र कहा है (शङ्कराचार्य्य) ब्रह्म सूत्र १।३।२४-२५ में इस पर विचार किया गया है ॥

बर्तन में डाला हुआ ज्यों का त्यों बना रहता है, इस प्रकार हे गौतम ! तत्वज्ञानी मुनि का आत्मा (सदा एकरस) होता है ॥

पांचवीं वल्ली ।

सं-अब उपायान्तर से उसी विषय का फिर उपदेश करते हैं:-

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः । अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वैतत् ॥१॥ हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथि र्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥२॥ (ऋग्वेद ४ । ४० । ५)

जिसकी चेतनता कभी टेढी नहीं होती (सदा एकरस रहती है) उस अजन्मा का एक पुर है,जिसके ग्यारह* द्वार हैं। जो इसको साध लेता है, वह फिर शोक में नहीं पड़ता, और वह (अविद्या के सारे बन्धनों से) छूटा हुआ विमुक्त हो जाता है ॥१॥ वह शुद्ध स्थान में रहने वाला हंस (संन्यासी) वह अन्तरिक्ष में रहने वाला सिद्ध, वह वेदि में बैठने वाला होता, वह (दूसरों के) घरों में घूमने वाला अतिथि, हां वह साधारण मनुष्यों में रहने वाला, वह चुने हुओं में रहने वाला, वह सचाई की तह में पहुँचने वाला, वह आकाश के अन्दर घुसने वाला, हां वह जलों में (निचले जीवन) में प्रकट होने वाला, वह पृथिवी में (ऊंचे जन्मों में) प्रकट होने वाला, वह ऋत (यज्ञ-परोपकार के कामों में) प्रकट होनेवाला, वह (उन्नति की) सब से ऊंची चोटी पर प्रकट होनेवाला है, वह एक बड़ी सचाई है ।

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति । मध्ये वामन मासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ३ ॥ अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः । देहाद्विमुच्य-

* ग्यारह द्वार यह हैं-सिर के सात छेद (दो आंखों के, दो कानों के, दो नासों के, एक मुख का) दो नीचे के छेद दसवां नाभि का ग्याहरवां मूर्धा (ब्रह्मरन्ध्र) का, देखो श्वेता० ३।१८ गीता ५।१३

मानस्य किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥ ४ ॥ न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन । इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥५॥

वह प्राण को ऊपर लेजाता है, और अपान को नीचे फेंकता है । सारे देव (इन्द्रिय) उस पूजनीय को पूजते हैं, जो मध्य में बैठा हुआ है ॥३॥ देह में रहने वाला यह देही जब फिसलता है और देह से अलग होता है, तब क्या पीछे रहता है ? यह है वह ॥ ४ ॥ न प्राण से और न अपान से कोई मनुष्य जीता है, जिससे जीते हैं, वह कोई और वस्तु है, जिस में कि यह दोनों (प्राण, अपाण) सहारा लिए है ॥६॥

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् । यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥ ६ ॥ योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः । स्थाणुमन्ये ऽनुसंयन्ति यथाकर्म्म यथा श्रुतम् ॥७॥

अच्छा हे गौतम ! मैं तुझे बतलाऊंगा यह गुह्य (रहस्य) सनातन ब्रह्म, और दूसरा) जैसा कि मरने के पीछे जीवात्मा होता है ॥६॥ कुछ देही अपने २ कर्म और ज्ञान के अनुसार* शरीर ग्रहण करने के लिए योनि में प्रवेश करते हैं, दूसरे स्थावरभाव को प्राप्त होते हैं ॥

संगति—अब गुह्य ब्रह्म का वर्णन करते हैं :—

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥ ८ ॥

---

* देखो० बृह० उप० २ । ३ । १३ ।

यह परम पुरुष जो हरएक कामना को रचता हुआ सोए हुओं में जागता है, वही चमकीला है, वह ब्रह्म है, वह ही अमृत कहलाता है। उस में सारे लोक सहारा लिये हैं, उस को कोई नहीं उलांघता है। यह है वह * ॥ ८ ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथासर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥९॥ वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपोबहिश्च॥१०॥सूर्योयथा सर्वलोस्य चक्षुन लिप्यते चाक्षुषे र्बाह्यदोषैः। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥११॥

जैसा एक अग्नि सारे भुवन में प्रविष्ट होकर रूप रूप के प्रतिरूप हो गया है †। इसी प्रकार एक आत्मा जो सब भूतों के अन्दर है, रूप रूप के प्रतिरूप है और बाहर भी है ‡॥ ९ ॥ जैसा एक वायु सारे भुवन में प्रविष्ट होकर रूप २ के प्रतिरूप होगया है इसी प्रकार एक आत्मा जो सब भूतों के अन्दर है,रूप २के प्रतिरूप है और बाहर भी है ॥१०॥ जैसा सूर्य सारी दुनिया का नेत्र हो कर भी आंख के बाहरी दोषों से लिप्त नहीं होता, इस प्रकार एक आत्मा सब भूतों का अन्तरात्मा हो कर भी लोक के दुःख से लिप्त नहीं होता (क्योंकि वह अन्दर रहकर भी) बाह्य है (अलग है) ॥११॥

---

* देखो ४।९; ६।१॥

† अग्नि यद्यपि एक है; पर वह भिन्न २ होता है उस हर एक वस्तु के अनुसार जिस में प्रविष्ट है ॥

‡ देखो बृ० आर० २।५१।१८॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्

अकेला वह सब को वश में रखने वाला, सब भूतों का अन्तरात्मा है, जो एकरूप (प्रकृति) को अनेक प्रकार का बनाता है, उस को जो धीर पुरुष आत्मा में स्थित देखते हैं, उनको सदा का सुख होता है, दूसरों को नहीं* ॥ १२ ॥ नित्यों का नित्य, चेतनों को चेतन, † अकेला जो बहुतों की कामनाओं को रचता है । (पूरा करता है) उसको जो धीर पुरुष आत्मा में स्थित देखते हैं, उन को सदा की शान्ति होती है दूसरों को नहीं ‡ ॥१३॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् । कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥ १४ ॥ न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१५॥

(प्रश्न) (ब्रह्मदर्शी) जिस परम पुरुष को जो कि बतलाने में नहीं आसकता, "वह यह है" इस तरह (प्रत्यक्ष) अनुभव करते हैं, मैं किस तरह उसको जानूं ? वह कौन है, जो चमकता है और विविध रूप से चमकता है ॥१४॥ (उत्तर) न वहां सूर्य चमकता है, न चन्द्र

---

* देखो० श्वेता० उप० ६।१२ † सर्वदा एक रस और सर्वान्तर्यामी होने से यह उसकी महिमा कही है, जैसे श्रोत्र का श्रोत्र मन का मन इत्यादि है (तल० १।२) ॥ ‡ देखो श्वेता० उप० ६।१३

न तारे न ही यह बिजलियें चमकती हैं. यह अग्नि तो कहां ? किन्तु उस के ही प्रकाशने से सब कुछ प्रकाशता है, हां उस के प्रकाश से ही यह सब प्रकाशित होता है* ॥ १५॥

छटी वल्ली ।

सं-साक्षात् दर्शन के साधन और मोक्ष का वर्णन करते हैं :-

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वैतत् ॥१॥

यह एक सनातन पीपल का वृक्ष है जिस की जड़ें ऊपर को हैं और शाखाएं नीचे को हैं † वही ‡ चमकता हुआ कहलाता है, वह ब्रह्म कहलाता है वही अमृत कहलाता है । सारे लोक उसमें सहारा लिये हुए हैं, उसको कोई नहीं उलांघता है § यह है वह ॥१॥

यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राणएजति निःसृतम् । महद्भयं वज्रमुदयतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२॥ भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः । भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३ ॥ इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः । ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥ यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि

---

* देखो श्वेता० उप० ६।१४ मुण्ड० २।२।१० गीता १५।६ ॥

† यहां वृक्ष से अभिप्राय ब्रह्मवृक्ष है मूल से शुद्ध और शाखाओं से शबल अभिप्रेत है । शुद्ध जो मूल है, वह ऊपर को है, शबल की उपासना के पीछे उसकी प्राप्ति होती है । और शबल शाखाएं हैं, जिसकी छाया का आश्रय हम इसी अवस्था में लिए हुए हैं ॥

"वृक्ष=संसार वृक्ष, मूल=परब्रह्म, शाखाएं=स्वर्ग नरक आदि" (शंकराचार्य) ॥ ‡ गीता १५ । १३ § देखो पूर्व ५ । ८ ॥

यथा स्वप्ने तथा पितृलोके । यथाऽप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥५॥

जो कुछ यह सारा जगत् प्रकट होकर प्राण (अपने जीवन ब्रह्म) में डोल रहा है, जो (प्राण) उठाए हुए वज्र की नाईं महा भयानक है, इसको जो जानते हैं, अमृत हो जाते हैं* ॥२॥ इस के भय से अग्नि तपती है, भय से सूर्य तपता है, भय से इन्द्र और वायु और पांचवां मृत्यु दौड़ता है† ॥३॥ यदि मनुष्य शरीर के गिरने से पहले इसको नहीं जान सका, तो वह सृष्टि के इन लोकों में फिर शरीर धारण के योग्य होता है‡ ॥ ४ ॥ जैसे शीशे में, इस प्रकार इस शरीर में (स्पष्ट दिखलाई देता है) और जैसे स्वप्न में वैसे पितृलोक में, जैसे जलों में वैसे गन्धर्वलोक में, जैसे छाया और धूप § में वैसे ब्रह्मलोक में दिखलाई देता है ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणां पृथग्भाव मुदयास्तमयौ च यत् पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥६॥ इन्द्रियेभ्यः

---

*प्राण=परमब्रह्म। उठाए हुए वज्र की नाईं, जैसे वज्र उठाय हुए स्वामी को सामने देखते हुए नौकर नियम से उस के शासन में चलते हैं, ठीक इसी तरह ही यह चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र तारा आदिक नियम से अपने काम में प्रवृत्त रहते हैं, इसलिए यह भी अपने स्वामी के साथ हैं (शंकराचार्य) ॥ † देखो तैत्ति० उप० २।८।१ ॥

‡ इस मन्त्र का अर्थ अपने पाठ में पूर्ण नहीं है, स्वामी शंकराचार्य इसका अर्थ यह लिखते हैं, यदि मनुष्य शरीर के गिरने से पहले ही उस ब्रह्म को जान ले, तो बन्धन से छूट जाता है, और यदि न जान सके तो पृथिव्यादि लोकों में शरीर ग्रहण करता है। इस अर्थ में बहुत कुछ अध्याहार किया गया है। जो अर्थ ऊपर दिया है उस में एक 'न' अधिक है। यदि 'इहचेन्नाशकद्' पाठ पढ़ा जाए, तो छन्दोभङ्ग भी नहीं होता और अर्थ भी पूर्ण हो जाता है ॥

§ जैसे धूप और तसवीर में, (रोअर)।

परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् । सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥७॥ अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंग एव च । यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥८॥ न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥९॥

वह धीर पुरुष जो (अपने कारण आकाशादिकों से) अलग २ उत्पन्न होने वाले इन्द्रियों के अलग होने को और उनके उदय और अस्त (जागने, सोने) को जानता है, वह शोक से परे हो जाता है * ॥६॥ इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे सत्त्व (बुद्धि), सत्त्व से परे महान् आत्मा (महत् तत्त्व), महान् से परे अव्यक्त, अव्यक्त से परे पुरुष, जो सारे व्यापक है, और जिसका कोई चिह्न नहीं, जिसको जानकर जन्तु (मनुष्य) मुक्त होजाता है और अमृतत्त्व को पाता है† ॥८॥ इसका कोई रूप सामने नहीं है, न आंख से कोई इसे देख सकता है, यह हृदय से, मन से, बुद्धि से प्रकाशित होता है । जो इसको जानते हैं, वह अमृत हो जाते हैं ‡ ॥९॥

---

* इन्द्रिय आत्मा से अलग हैं, जागना सोना इन्द्रियों में होता है, न कि आत्मा में ॥

† ७,८ के विषय में देखो पूर्व ३ । १०, ११ वहां इन्द्रियों से परे अर्थ कहे हैं, और अर्थों से परे मन कहा है । पर यहां अर्थों को बीच में से छोड़ दिया है क्योंकि अर्थ इन्द्रियों के समान जातीय ही हैं ।

‡ श्वेता० उप० ४ । २० में यह इस तरह पर है । जो हृदय से और मन से हृदय में रहते हुए को जानते हैं वह अमृत होते हैं ॥

संगति-परमात्मा के साक्षात्कार का साधन योग बतलाते हैं:—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥१०॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥११॥

जब पांचों ज्ञानेन्द्रिय मन के साथ स्थिर होजाते हैं और बुद्धि भी नहीं डोलती है, उसको कहते हैं सब से ऊंची अवस्था॥१०॥इसी को योग मानते हैं,जो यह इन्द्रियों की निश्चल धारणा है। उस समय वह (योगी) प्रमाद (अपने आपको जो भूला हुआ था उस) से रहित होता है, क्योंकि योग प्रभव और अप्यय (उत्पत्ति और लय) का स्थान-आन्तरज्ञान की उत्पत्ति और बाह्य ज्ञान की लय का स्थान है।

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥१२॥
अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥१३॥

वह (आत्मा) न वाणी से, न मन से, न आंख से पाया जा सकता है। 'वह है" ऐसे कहने वाले के सिवाय कैसे उपलब्ध होता है? ॥१२॥ 'वह है' इस रूप से और तत्त्व स्वरूप से उसको जानना चाहिये, जब वह 'है' इस प्रकार अनुभव कर लिया है, तो उसका तत्त्वस्वरूप (देखने के लिए) साफ होजाता है*॥१३॥

* विशिष्ट रूप में उसका 'वह है' करके अनुभव करते हैं, और शुद्ध स्वरूप में उसका तत्त्वभाव (देखो वेदोपदेश में शुद्ध शबल का वर्णन)॥

सं० जीवन्मुक्त की अवस्था कहते हैं:—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥१४॥
यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम् ॥१५॥

जब सब कामनाएं, जो इसके हृदय में रहती हैं, छूटजाती हैं, तब मर्त्य (मरने वाला मनुष्य) अमृत होजाता है, यहां वह ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥१४॥ जब हृदय की सारी ग्रन्थियें * (गांठें) यहां खुल जाती हैं, तब मर्त्य अमृत होता है, इतना ही अनुशासन है† ॥१५॥

सं० जीवन्मुक्त की विदेह मुक्ति बतलाते हैं:—

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्त्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥१६॥ अंगुष्ठमात्रः पुरुषोन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः । तं स्वाच्छरीरात् प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण । तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥१७॥

सौ और एक (१०१) हृदय की नाड़ियें हैं ‡, उनमें से एक मूर्धा की ओर (ऊपर को) निकली है, उस से ऊपर आता हुआ मनुष्य (मरने के पीछे) अमृतत्त्व को प्राप्त होता है §; दूसरी (१००)

---

* अविद्या कामना आदि । देखो० मुण्ड० उप० २।१।१०; २।२।६ ॥

† वेदान्तकी शिक्षा यहां तक है । इससे आगे नहीं (मिलाओ-प्र० ६।७)॥

‡ देखो० छान्दो० उप० ८ । ६ । ६ ॥

§ वह सूर्य्य में से होकर (१।२।११); स्वामी शङ्कराचार्य्य यह मार्ग उस के लिए मानते हैं, जिस ने परब्रह्म को नहीं जाना, वह अपने ज्ञान और कर्म्म का फल भोगकर फिर वापिस आता है ॥

नाड़ियें निकलने में भिन्न २ गति (देने) वाली होती हैं ॥१६
अंगूठा मात्र अन्तरात्मा पुरुष सदा मनुष्यों के हृदय में रहता है
उसको अपने शरीर से धैर्य्य से निकाले, जैसे मुञ्ज से ती
(निकाली जाती है) । उसको जाने चमकता हुआ, अमृत, चमकत
हुआ अमृत † ॥१७॥

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां यो
गविधिं च कृत्स्नम् । ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्यु
र्न्योप्येवं यो विदध्यात्ममेव ॥१८॥

सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥१९॥

मृत्यु से बतलाई हुई इस विद्या को और योग की सम्पू
विधि को लाभ करके नाचिकेता ब्रह्म को प्राप्त होकर रज ‡ से औ
मृत्यु से रहित होगया, और भी जो कोई इस अध्यात्मविद्या क
इस प्रकार जानता है (वह ब्रह्म को प्राप्त होकर मृत्यु से रहि
होजाता है) ॥१८॥ (ब्रह्म) हम दोनों (शिष्य और आचार्य्य) क
रक्षा करे, वह हम दोनों को (विद्या का फल) भुगाए, हम मिलक
बल उत्पन्न करें, हमारा पढ़ा हुआ चमकने वाला हो, हम क
द्वेष न करें ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१९॥

कठ उपनिषद् समाप्त हुई ।

---

* श्वेता० उप० ३ । १३ ॥

† यहां पूरे वाक्य का दोबार उच्चारण ग्रन्थ की समाप्ति के लिए है

‡ रज=धूलि=धर्म्म, अधर्म्म । विरज, अकारान्त का ऐसे ह
अवसर पर अन्यत्र भी प्रयोग हुआ है (देखो मुण्डक १ । २ । ११) ।

॥ ओ३म् ॥

सूचीपत्र ।

संस्कृत के अनमोल रत्न ।

अर्थात् वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, धर्मशास्त्रों और इतिहास ग्रन्थों के शुद्ध, सरल और प्रामाणिक भाषा अनुवाद ।

ये भाषानुवाद पं० राजाराम जी प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर के किये ऐसे बढ़िया हैं, कि इन पर गवर्नमिन्ट और यूनीवर्सिटी से पं० जी को बहुत से इनाम मिले हैं । योग्य २ विद्वानों और समाचारपत्रों ने भी इनकी बहुत बड़ी प्रशंसा की है । इन प्राचीन माननीय ग्रन्थों को पढ़ो और जन्म सफल करो ॥

(१) श्री वाल्मीकि रामायण—भाषा टीका समेत । वाल्मीकि कृत मूल श्लोकों के साथ २ श्लोकवार भाषा टीका है । टीका बड़ी सरल है । इस पर ७००) इनाम मिला है । भाषा टीका समेत इतने बड़े ग्रन्थ का मूल्य केवल ६।)

(२) महाभारत—अनावश्यक भाग छोड़ अठारह पर्व भाषा टीका समेत । इस की भी टीका रामायणवत् ही है । मूल्य केवल १२)

(३) भगवद्गीता—पद पद का अर्थ, अन्वयार्थ और व्याख्यान समेत । भाषा बड़ी सुपाठ्य और सुबोध । इस पर ३००) इनाम मिला है । मूल्य २।), गीता हमें क्या सिखलाती है मूल्य ।-)

(४) ११ उपनिषदें—भाषा भाष्य सहित—

१—ईश उपनिषद	≡)	७—तैत्तिरीय उपनिषद	॥)
२—केन उपनिषद	≡)	८—ऐतरेय उपनिषद	≡)
३—कठ उपनिषद	।≡)	९—छान्दोग्य उपनिषद	२।)
४—प्रश्न उपनिषद	।-)	१०—बृहदारण्यक उपनिषद	२।)
५,६—मुण्डक और माण्डूक्य दोनों इकट्ठी	।≥)	११—श्वेताश्वतर उपनिषद	।-)
		उपनिषदों की भूमिका	।-)

(५) मनुस्मृति–मनुस्मृति पर टीकाएं तो बहुत हुई हैं, पर यह टीका अपने ढंग में सब से बढ़ गई है। क्योंकि एक तो संस्कृत की सारी पुरानी टीकाओं के भिन्न २ अर्थ इस में दे दिये हैं दूसरा इसका हर एक विषय दूसरी स्मृतियों में जहां २ आया है, सारे पते दे दिये हैं। तिस पर भी मूल्य केवल ३।) है।

(६) निरुक्त–इस पर भी २००) इनाम मिला है ४॥)

७–योगदर्शन	१।।)	१५–दिव्य जीवन	१)
८–वेदान्त दर्शन	४)	१६–आर्य पञ्चमहायज्ञ पद्धति	।–)
९–वैशेषिक दर्शन	१॥)	१७–स्वाध्याय यज्ञ	१)
१०–सांख्य शास्त्र के तीन प्राचीन ग्रन्थ	।।।)	१८–वेदोपदेश	१)
		१९–वैदिक स्तुति प्रार्थना	≡)
		२०–पारस्कर गृह्यसूत्र	१॥≡)
११–नवदर्शन संग्रह	१।)	२१–बाल व्याकरण इस पर २००) इनाम मिला है	॥)
१२–आर्य-दर्शन	१॥)		
१३–न्याय प्रवेशिका	॥≡)	२२–सफल जीवन	॥)
१४–आर्य-जीवन	१॥)	२३–प्रार्थना पुस्तक	–)॥

२४–द्रौपदी का पति केवल अर्जुन था–यह महाभारत के ही प्रमाणों से दिखाया गया है ≡) तत्त्वप्रदीपिका-चित्सुखी १॥)

२५–नल दमयन्ती–नल और दमयन्ती के अद्वितीय प्रेम, विवाह विपद् तथा दमयन्ती के धैर्य कष्ट और पातिव्रत्य का वर्णन ।)

वेद और महाभारत के उपदेश	–)॥	वेद मनु, और गीता के उपदेश	–)॥
वेद और रामायण के उपदेश	–)॥	वैदिक आदर्श	)॥
अथर्ववेद का निघण्टु	।।।≡)	हिन्दी गुरुमुखी	–)
सामवेद के क्षुद्र सूत्र	॥)	पञ्जाबी संस्कृत शब्दशास्त्र	।≠)

नोट—कार्यालय की इन अपनी पुस्तकों के सिवाय और भी सब प्रकार की पुस्तकें रिआयत से भेजी जाती हैं॥

मिलने का पता—

मैनेजर आर्ष-ग्रन्थावलि लाहौर।